श्री श्वेताम्बर साधूमार्गी जैन धर्मानुयायी-
ओंको अवश्य जानने योग्य.

ऐतिहासिक नोंध.

विविध साधनों परसे
अहमदाबाद निवासी
वाडीलाल मोतीलाल शाहने
गुर्जर भाषामें लिखा.
और
एक 'भारतवासी' ने
हिंदी अनुवाद किया.

प्रसिद्ध कर्त्ता,
वाडीलाल मोतीलाल शाह
अधिपति, 'जैनसमाचार,' 'जैनहितेच्छु'
व 'हिंदी जैनहितेच्छु'

मूल्य ०-८-०

अर्पण हो.

इस पुस्तक

उन स्वर्गस्थ महात्माओंको

जिनोंने

निर्मल जैनधर्मको चौतर्फमें फैलानेके लिये

अत्यंत कष्ट सहा था

और जो

अब भी अदृश्य रहकर

धर्मसुधारकों के रास्तेको सुगम बनानेका

कार्य कर रहे हैं.

"जीवन चरित महापुरुषोंके
हमें नसीहत करते हैं
हम भी अपना अपना जीवन
स्वच्छ रम्य कर सकते हैं
हमें चाहिए हम भी अपने
बना जांय पद-चिन्ह ललाम
इस जमीन की रेती पर-जो
वक्त पड़े आवें कुच्छ काम
देख देख जिनको उत्साहित
हों पुनि वे मानव मति धर
जिन की नष्ट हुई हो नौका
चट्टानोंसे टकरा कर
लाख लाख संकट सह कर भी
फिर भी हिम्मत बांधें वे
जाकर मार्ग मार्ग पर अपना
'गिरिधर' कारज साधें वे"

LONGFELLOW.

उपोद्घात.

प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि अपने धर्म का तत्व थोडा भी जान लेना. उसकी साथ अपने धर्म कबसे शुरु हुआ, पहलेके जमाने-में कैसे प्रतापी पुरुषों हो गये, उस धर्मकी दशामें किस तराह सुधारा या बिगाडा हु-आ, उस धर्मके शत्रुशत्रु जो जो बात निन्दाके लिये कहते हैं उसमें सच्चाइका कितना अंश है ये सब बातें प्रत्येक सुज्ञको जानना ही चा-हिये.

परन्तु अफसोसकी बात है कि ये सब बातें जाननेके साधन श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैनोंके लिये बहुत थोडे हैं और लोगोंको सूत्रों पढनेकी शक्ति या फुरसत भी नहीं है; अत एव मेने मेरे गुजराती 'जैनहितेच्छु' मासिक पत्रमें ४-५ वर्ष पहले एक लेख

प्रगट किया था, जिस्में उपरोक्त बातोंका अति संक्षेपमें समावेश किया गया था. फिर गुजरात–काठियावाड–मालवा–मारवाड–पंजाब–दक्षिण वगैराके मुनिराजों व श्रावकोंकी तर्फसे पटावलीकी कइ प्रतें मुझे मिली और पंजाब जानेका मोका भी मिल गया. पंजाबमें परमपूज्य महापुरुष श्री सोहनलालजी महाराज साहबकी कृपासे पंजाबकी पटावलीका पत्ता मिला. उन सब साहित्यों परसे मेंने जैन इतिहासकी नोंध भी तैयार कर ली. और गुजरातके एक छोटेसे ग्राम (विसलपुर) की जैनशाला के लाभार्थ एक महाशयने उस पुस्तककी ४००० प्रत छपवा कर १०४ बडे पृष्ठका पुस्तक सिर्फ तीन आने दाममें बेचना शुरु किया. यह पुस्तक सारे हिंदके जैनोंमें थोडे ही वक्तमें बहोत प्रसिद्ध हुआ और गत पर्युषणमें तो कइ मुनिराजोंने व्याख्यानमें उसी ग्रंथ पढ कर सुनाया. परन्तु मंदीरमार्गीयोंके धर्मगुरु वल्लभविजय कि जो निंदाको ही धर्म समझते हैं और स्तुतीको जैसे स्वप्न भी न्यून के ही भासे हैं इसी तरह जो स्व-

अमें भी अैसा दिखते है कि सब लोग उन्की निंदाके लिये कोशीश कर रहे हैं, उन्होंने 'जवाबदावा' नामका एक ५–७ पृष्टका 'गटर क्लास' पेम्फलेट प्रसिद्ध किया, जिस्में वह खुद आपको ही 'शठ' कहते हैं और उन्की कॉन्फरन्सके सब लोगोंको 'धूर्त' कहते हैं तोभी उन्की कॉन्फरन्स के आंखोंके पडल न खुलते उलटे हमारे पुस्तकके बारेमें श्री साधुमार्गी कॉन्फरन्सको फर्याद किया है. हम अैसे लोगोंके अपने मुहसे जवाब दे अर्थात् हमारे बनाये पुस्तकके बारेमें हम ही खुद निर्दोषता जाहेर करे इससे उत्तम बात तो ये है कि प्रजा खुद वो पुस्तक लक्षपूर्वक पढ लेवे और अपना नेक अभिप्राय जाहेर करे. इस लिये हमने सोचा कि उस पुस्तककी हिंदी आवृत्ति तैयार करके जलदी छपीजाय, ता के सारे हिंदके जैनों उसके गुण–दोष अपने आप ही देख लें.

पुस्तकमें क्या क्या बातका समावेश होता है उस्का खुलासा पाठक गणको अब करदे इस लिये अब संक्षेपमें

कहना मुनासीब समझाजाता है कि, पहले प्रकरणमें धर्म क्या चिज है, जैन धर्म कैसा है, साधुमार्गी जैनधर्मकी सच्चाइकी सबुत क्या है: इत्यादि बातोंका समावेश अति संक्षेपमें हो जाता है. दुसरे प्रकरणसे इतिहास शुरु होता है, जिस्में श्री महावीर प्रभुसे श्रीमान् लोंकाशाह तकका इतिहास दिया गया है. फिर आगे लोंकाशाहके वक्तसे आज तकका इतिहास दिया गया है. सब समुदायोंका संक्षिप्त बयान उस्में आ जाता है. और श्री संघके हितार्थ सुधारणाके कइ विचारों भी दर्शाये गये हैं. इस पुस्तककी एक एक प्रत प्रत्येक जैन बंधुके घरमें होनी ही चाहिये. इस पुस्तकके प्रचारसे प्रत्येक साधुमार्गी जैन अपने महजबमें ज्यादातर दृढ बनेगा और जो लोग धर्मसे च्युत हुए हैं पुनः उस धर्म में प्रवेश करेंगे.

प्रकरण १.

धर्म सम्बन्धी सामान्य विचार.

धर्म पदार्थ वास्तवमें सच है या कल्पना मात्र है अथवा भ्रमजाल है, मैं इस पचडेको छेडना नहिं चाहता और न मैं इस वादविवादमें खडा हूंगा. क्यों कि मैं स्वयं एक समय धर्मोंकी परस्पर विरुद्धता और धर्मके नामसे होनेवाले क्लेशोंको देख कर यों मानता था कि, " एक और एक दो " यह बात सच है तो इसमें दो मत होते ही नहि हैं; इसी तरह यदि धर्म सच्चा हो तो उसमें भिन्नमत होवे ही क्यों कर ? और धर्मके सिवाय और सब वस्तु डबोने वाली और सिर्फ धर्म ही तिरानेवाला हो तो धर्मके नामसे क्लेश क्यों होते हैं ? इन इन विचारोंने मुझे धर्मकी सत्ता या उसके मोक्षफल देनेकी सत्तामें श्रद्धाहीन कर दियाथा. परन्तु अनुभवने मुझे अब सिखला दिया है कि,जैसे गणितविज्ञान सर्वथा सत्य

सूर्यसे ही उल्लू, चिमगादड, वागल (Bat) आदि दुःखी होते हैं; शीतोपचार ही जिनके अनुकूल हों ऐसे प्राणी और पदार्थ मात्रको सूर्य हानिकारक होता है. इस विचारसे मालूम होता है कि सूर्य स्वयं किसीको हानि या लाभ नहीं पहुंचाता, बल्कि उसका धर्म प्रकाशित होना है इससे वह प्रकाशित रहता है; उसके प्रकाशसे पृथक् २ क्षेत्र–काल–द्रव्य और भावमें आये हुए प्राणी या पदार्थ लाभालाभ पाते हैं. इसी भांति धर्म सत्य रूप है वह किसीको लाभ–अलाभ पहुंचानेको नहीं जाता है, उल्लूकी-सी अंध दशामें हुए मनुष्यको यदि धर्म दुःखदायक हो तो इसमें न धर्मका दोष है और न मनुष्यका; यह सब उसके पूर्वजन्मके कर्मोंका दोष है, कि जिनके प्रभावसे वह धर्मको प्रत्यक्ष नहीं कर सकता. और जो धर्मके नाम पर झगडे होते हैं यह धर्मका दोष नहीं है परन्तु 'मतो'ओंकी खेंचातानका परिणाम है. 'धर्म' और 'मत' का भेद समझने लायक है. जब 'धर्म' शब्द उन

सत्योंकी सूचना करता है कि जो कभी तबदील नहीं किये जा सकते हैं; तब 'मत' अनेक महापुरुषोंके चलाये हुए उन २ नियमोंको बतलाता है कि जिन २ नियमों पर धर्मको व्यवहारमें लानेकी चेष्टा की गई है. ये कायदा-नियम सर्व मनुष्योंके लिये एकसे नहीं होते परन्तु एकको जो नियम अमृततुल्य होता है वह दूसरेको कभी विष तुल्य भी होता है. ऐसा होनेसे, यदि अमृतको विष कहनेवालेकी साथ अमृत माननेवाला झगडा करे और विषको अमृत कहनेवालेकी साथ विष माननेवाला लडने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसीका नाम 'मत' और इसीका नाम 'मतवाले मनुष्य' है.

मैं यह यद्यपि कह नहीं सकता कि सब मतोंमें सत्य ही को लक्ष्य बनाया गया है तो भी इतना तो मुझे मालूम हुआ है कि बहुतसे मत देशकालादि के-और मतोंकी अपेक्षा-अनुकूल हैं और इसीसे उनका जन्म हुआ है. चीनी लोगोंके अफीम बिना नहीं सरता; उनका अफीम पान सुपारी जैसा प्रिय है;

ऐसे अजर-अमर धर्ममें किसी भांतिका भ्रम-जिसे जैन 'मिथ्यात्व' और अंग्रेज 'सुपरस्टीशन (Süperstition)' कहते हैं- होइ नहीं सकता. ऐसे धर्मको अमुक मत के ही मनुष्य जानते हैं या जान सकते हैं यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता. इसके तत्व थोडे और बहुत सब जगह बिखरे हुए हैं. प्रोफेसर जहॉन वुइल्यम ड्रूपर M. D. L. L. D. जैनियों या वेदान्तियोंसे हजारों कोस दूर रहते हुए और उनको संगतिका लाभ उठाये बिना भी कहते हैं:—

"Every appetite, lust, desire, springs from imperfect knowledge. Our nature is imposed upon us by Fate, but we must learn to control our passions, and live free, intelligent, virtuous, in all things, in accordance with reason. Our existence should be intellectual, we should survey with equanimity all pleasures and all pains. We should never forget that we are freemen, not the slaves of Society. We must remember that

everything around us is in mutation; decay follows reproduction, and reproduction decay, and that it is useless to repine at death in a world where everything is dying. As a cataract shows from year to year an invariable shape, though the water composing it is perpetually changing, so the aspect of Nature is nothing more than a flow of matter presenting an impermanent form.

"We must bear in mind that the majority of men are imperfectly educated, and hence we must not needlessly offend the religious ideas of our age. It is enough for us ourselves to know that, though there is a Supreme Power, there is no Supreme Being. There is an invisible principle, but not a personal God, to whom it would be not so much blasphemy as absurdity to impute the form, the sentiments, the passions of man. That which men call chance is only the effect of an unknown cause. Even of chances there is a law. There is no such thing as

providence, for Nature proceeds under irresistible laws and in this respect the universe is only a vast automatic engine. The vital force which pervades the world is what the illeterate call God. The modifications through which all things are running take place in an irresistible way, &c. &c. &c. "

प्रोफेसर ह्युइल्यम ह्यूपरका लिखनेका भावार्थ यह है कि प्रत्येक सुख, हरेक विकार, कोई भी इच्छा ज्ञानकी अपूर्णतासे उत्पन्न होती है (=ज्ञान अधूरा हो तो ही इच्छा या विकार पैदा होते है) पूर्वोपार्जित कर्मोंके प्रभावसे हमे अपना स्वभाव मिला है तोभी हमें अपने मनको वशमें रखना चाहिए. (इसमें कर्मको प्रधानता देनेपर भी पुरुषार्थ की हिमायत की है) और हमें प्रत्येक बातमें स्वतन्त्र, बुद्धियुक्त, सद्गुणशाली और न्यायपूर्ण चरित्र रखना चाहिये. हमारा जीवन सज्ञान होना चाहिए. हमें सुख और दुःख पर समभावसे मनन करना चाहिए. हमें कभी न भूल जाना चाहिए कि हम स्वतन्त्र

पुरुष है. आजाद आदमी हैं, न कि लोगोंके गुलाम-दास. हमें याद रखना चाहिए कि हमारे आसपासके प्रत्येक पदार्थका रूपान्तर हुआ करता है. वस्तु उत्पन्न होती है, बिगडती है, मिटती है. अतएव सबकी मृत्यु है तो हमें मौतका सोचही करना योग्य नहीं है. जैसे किसी पहाडमेंसे श्रोत बहता हो तो नवीन २ जल आते रहने पर भी रूप एकसा देख पडता है वैसे ही प्रकृतिका दिखाव पलटते हुए परमाणुओंके सिवाय कुछ नहीं है.

"हमें यह भूलजाना न चाहिए कि मनुष्योंका एक बडा हिस्सा अर्द्धशिक्षित है; अतएव हमें उनके धर्म सम्बन्धी विचारोंके विषयमें उन्हें व्यर्थ दुःख न पहुंचाना चाहिए. हमें अपने लिए इतना अवश्य जान रखना चाहिए कि एक सत्ता सर्वोपरि है-एक महतीशक्ति (Power) है जो कि सर्वोपरि प्राणी [Being] है नहीं, परन्तु अदृश्य तत्त्व जरूर है. मनुष्य पुरुषका ऐसा नहीं है इस लिए उसमें मनुष्यका सा रूप, मनुष्य के से विचार और विकार स्थापन करना उसका

अपमान करने बराबर है, यही नही महा मूर्खता भी है. जिस बातको मनुष्य कर्म अथवा नसीब कहते हैं वह और कुछ नहीं है केवल अज्ञात कारणोंका परिणाम है. इन कर्मोंके के भी नियम हैं. कर्ता कोई है ही नही क्योंकि कुदरत अनिवार्य (Irresistible) नियमानुसार ही चल रही है. इस बात देखनेसे ज्ञान होता है कि विश्व अपने आपसे चलता हुआ एक बडा अंजीन है. जो चैतन्य (Vital force) सर्वत्रव्यापक है उसीको अल्पमति मनुष्य ईश्वर-प्रभु कहते हैं."

ये विचार मुझे तो 'धर्म' के जान पडते हैं, अनादि और अनन्त प्रकृति मंडलमें फिर चाहे मेरे ज्ञानान्तरायी कर्म मुझे और का और ही बतलाह रहे हों. और इसीसे मैं यों मानता हूं कि देवको पूजा प्रतिष्ठा मान मर्यादाकसे किसीकी जरूरत नही है और न वह किसीको कुछ देता है और न किसीसे कुछ लेता है. देवके नामसे जो मान्यता (रीवाज ?) धामधूमसे की जाती है वह भ्रम है, मिथ्यात्व है, Superstition है!

मनुष्य देह पाकर हमें चाहिए कि हम सुकृत्य करें, सद्विचार विचारें, हमें जिस सत्वमें मिलना है उसमें मिले हुए सज्जन महानुभावों के चारित्र पर विचार करें. यही कर्तव्य है. इस कर्तव्यको पालन करनेवाले मनुष्योंके दो भेद हैं; अर्थात् एक साधारण शक्तिवाले-जो कितने ही अंशमें धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकते हैं ऐसे सम्यक्त्व धारी संसारी और दूसरे सर्वांशमें धर्ममय जीवन रखनेवाले साधु, जो १७ भेदसे संयमका पालन करते हैं.

षड्दर्शनमें कौन सर्वश्रेष्ठ है मैं इस वादमें नहीं पडूंगा परन्तु ऊपर लिखे हुए सत्यके जैन दर्शन बहुत अनुकूल है इससे मैं इसीको मानकर इसी धर्म सम्बन्धी कुछ कहूंगा- ऐसा करनेसे यदि और दर्शनके ज्ञानीयोंको बुरा मालूम हो तो मैं पहलेसेही क्षमा चाहता हूं.

जैन धर्मके साधु मन, वचन, कायसे हिंसा नही करते, न कराते हैं और न करनेवालेका अनुमोदन करते हैं. जैन धर्मका

यह सिद्धान्त कभी न फिरसके ऐसा उत्तम है. इसीलिये मैं मानता हूं और दृढतापूर्वक मानता हूं कि जैन धर्मके न्यारे २ मतोंमेंसे कोई मत यह प्रतिपादन करे कि साधुको धर्मार्थ हिंसा करनेमें कोई पाप नहीं; वो उसका स्थापन करनेवाला धर्मज्ञ होनेपर भी स्वार्थान्ध है. क्योंकि जिस मनुष्यमें मत चलादेने जितनी सामर्थ्य हो वह धर्मसे अनभीज्ञ नहीं होसकता. तब यह प्रगट ही है कि ऐसी प्ररूपणाका–इस भांति प्रतिपादन करनेका कारण कोई स्वार्थ होना चाहिए. यह स्वार्थ ही क्यों उत्पन्न हुआ इसका दृष्टान्त यहांपर देना ठीक होगा:–

श्री वीरके निर्वाण पदको प्राप्त होनेके ६२० वर्ष बाद जो वज्रसेन स्वामीका स्वर्गवास होगया उनके समयमें पांच वर्षका और सात वर्षका यों बारह वर्षका बड़ा भारी दुष्काल–कहत पडा. इस भयंकर कहत में दुनिया खुद ही दयाजनक स्थितिमें आ पडी और भूखो मरने लगी तो दान कहांसे करती ? इससे जो सच्चे सुपात्र साधु थे

से७८४ साधु तो संथारा कर स्वर्गको गये और कितनेहीं दूर देशोंमें चले गये. कितनोंनें वक्तका विचारकर पेट भरने के रस्ते बनाडाले. उन्होंने भिक्षुक वृत्तिमें स्पर्श करने वालोंको दूर हटानेके लिये हाथमें लकडी रखना शुरू किया. धाडेके डरसे किवाड बन्दकर बैठनेवाले जैनोंको अपनी जान पहचान करानेके लिये 'धर्म लाभ' शब्द बोलनेकी रीति निकाली. ऐसी २ बहुतसी बातें बन गईं. आखिरकार और २ मतोंमें मूर्ति पूजाकी खूब चलती हुई देखकर भगवानकी मूर्तिके साम्हने अन्नादि रखनेसे द्रव्यादि* भेट करनेसे धर्म होता है ऐसा उपदेश शुरू किया. यही रिवाज नाना प्रकार के रूपोंको पलटता हुआ आगे बढता गया.

---

*एक समय क्रिश्चियन पोप भी ऐसी ही तरकीबसे टका सीधा करने लगे थे. वे परमेश्वर पर हुंडी (Benevolences) लिख देते थे कि अमुक व्यक्तिको आपके दर्बारमें मंजूर करना! और इसके पलटे जैसा शख्स वैसा ही टेक्स वो लाखोंपर हाथ फेरते थे.

क्यों न बढे? जो दुनियामें अपनी ओर झुकानेवाले उत्साही और हिम्मतवाले हो तो झुकनेवाले तो बहुत ही हैं. तलवारके जोरसे धर्म फैलानेवाले के अनुकूल एक समय दुनियाका $\frac{3}{4}$ होगयाथा. कुमारीके पेटसे प्रभुका अवतार होना मनाने वाले के अनुकूल इतने माननेवाले होगये कि जिनकी गिनती करना भी कठिन है. कई भजन गानेवाले नाच कूद कर स्त्रियोंके मनको लुभा, उनसे धन ठग लेते है, किसी २ स्त्रीको उडा ले जाते हैं; ऐसोंके भी हजारों भक्त मैंने खुद अपनी आंखोंसे देखे हैं; विशेष क्या कहूं 'कांचलिया पंथ' और 'वाममार्ग' जैसे व्यभिचारी पंथ भी हिंदमें कहीं २ पाये जाते हैं. वाम मार्गकी पुस्तकें संस्कृतमें हैं और वे भी इतनी कि गाडीका वडा डब्बा भरजाय! संस्कृतमें खूबीके साथ लिखसकें ऐसे विद्वानोंने मद्य–मांस–मैथुनमें ही धर्म बतलाया और रजस्वला स्त्रीको देवी कहकर पूजी! उन्हें भी जब हजारों अनुयायी–ब्राह्मण तक मिल गये तो फिर औरोंके लिये तो

कहना ही क्या है ?

लोगोंका एक बडा भाग अज्ञानमें डूब रहा है. उन्हे धर्मके नामसे युक्तिसे, प्रपंचसे, मोहनसे, लालचसे या जैसें बने वैसें बहुतसे लोग समझाकर वाहवाह लूटते हैं या सम्पत्ति कमाते हैं. परन्तु जो शुद्ध सनातन धर्मके प्रेमी है वे तो कभी ऐसा मार्गका अवलम्बन ही नही करते. चाहे फिर इनमें संस्कृत ग्रन्थ लिखनेकी शक्ति हो या न हो, ये कभी मिथ्यात्वमें या हिंसामें धर्म नही बतला सकते. इनकी पोशाक सादा हो चाहे मलीन हो, भाषा चाहे उत्तम हो या ग्राम्य, जीवन प्रकट हो या कहीं एकान्तमें छिपा हुआ, परन्तु हैं ये सत्य पर. "इनका व्यापार बडा भारी लाभदायक होगा इसमें चाहे किसीको कुछ एतराज भी हो परन्तु थोडा बहुत तो फ़ायदा करेगा ही और नुकसान तो हरगिज नहीं करेगा" इसके साबित करनेकी कदाचित् आवश्यक्ता न पडेगी.

जब ध्यानके लिये मूर्तिकी आवश्यक्ता कहनेवाले भी स्वीकारते हैं—मंजूर करते हैं

कि जडपदार्थमें भगवानके गुणोंको आरोपित करना पडता है-"यही भगवान है" ऐसा मानना पडता है He has to make believe after all ! तब बिना मूर्ति स्थापन किये अपनी आंखोंके साम्हने या हृदयमें स्थित ही भगवानको क्यों न मान लिया जाय? जो ध्यानकी पुष्टिके लिये सीढी* तुल्य मूर्तिपूजा मानी गई हो तो उसके साम्हने लड्डू पेडे बर्फी और द्रव्यादि रखनेकी क्या जुरूरत? क्या ये चीजें ध्यानको पुष्टि देनेवाली हैं? "वीर प्रतिमा वीर समान" यह कह

---

* सीढी गिननेवालोंको भी छतपर पहुंचे बाद तो सीढीको अवश्य छोड देना चाहिये; परन्तु मूर्तिपूजाको सीढी माननेवालोंमेंसे कितनोंने ऊपरके दर्जेपर चढकर मूर्तिपूजाका त्याग किया? किसीने नहीं. त्यागी मुनिवर्ग भी यात्रा करने जाते हैं और मूर्तिपूजन करते हैं. क्या विद्यार्थी सदा ही शुरूके पट्टेसे अ, आ, १–२ किया करेगा? क्या वह गहन शास्त्र और गम्भीर गणितका अभ्यास नहीं करेगा?

कर जो प्रतिमाको भगवान माना जाय तोभी विचारनेकी बात है कि जब भगवान देह-धारी थे तब भी वे कभी लक्ष्मी और वन-स्पतिको छूते नही थे तो अब ये चीजें उनकी मूर्तिके पास क्योंकर रक्खी जावें? जो भग-वान आधाकर्मी आहार वहोरते नही थे उ-नके पास आहार लाकर कैसे भोग लगाया जावे? जो भगवान टामटीम जेवर आदि से शरीरसंस्कार नही करते थे प्रत्युत इसे क्षणभंगुर समझ कर सेवा सुश्रुषा करनेसे लोगोंको मना कर देते थे उनकी मूर्तिको वस्त्रालङ्कार और तेल फुलेल इत्रकी क्या आवश्यकता? और गाने बजाने और नाच-नेकी क्या जुरूरत? जो वीरभगवानकी मूर्ति ही वीरभगवान हो तो इनके अलङ्कारोंको जो चोर चुरा ले जाते हैं, उनके खजानेमेंसे उनने भक्त बडी २ रकमें मार खाते हैं उन्हें शासन देवता क्यों नही रोकते? सेरे-सन लोगोंने जब फ्रान्सको बरबाद किया और वहांके देवमदिन्र और मठोंको लूटे उसका वर्णन करते हुए एक अंग्रेज विद्वानने लिखा

है कि " जिन कुलदेवताओंकी जिस समय जुरूरत नही थी उस समय तो वे चमत्कार बताते थे और जब उनकी सचमुच मददकी जुरुरत पडी तब न मालूम वे कहां जा छिपे !"

"All central France was now over--run, the banks of the Loire reached, the churches and monasteries were despoiled of their treasures, and the tutelar saints, who had worked so many miracles when there was no necessity were found to want the requisite power when it was so greatly needed".

कोइ २ यह दलील पेश करते हैं कि, मूर्तियां जमीनमें गडी हुई मिलती हैं इससे मूर्तिपूजा सदासे चली आती है परन्तु मुम्बई जैसे सुधरे हुए नगरमें थोडा अरसा हुआ एक शिक्षित (?) मनुष्यने (जो जैनमतानुयायी था) किसी खास स्थान पर मूर्ति और रुपया गाड दिया और जाहिर किया कि भगवानने मुझे स्वप्न दिया है कि मुझे निकालो; हजारों आदमी इकट्ठे होने लगे और मूर्तिके निकलने पर मानता होने लगी परन्तु

जब रुपये परकी साल (वर्ष) पढी गई तो भंडा फूट गया ! कौतुक पहचान लिया गया! इससे यह सिद्ध होता है कि बहुतसी मूर्तियां इसी तरह दबा दी गई थी. बहुतसी, मन्दिर जमीनमें दब जानेसे दब गईथी. क्या यह योग्य है कि सर्वशक्तिमान भगवानकी मूर्तिओं खोदकर हमें जमीनमेंसे निकालना पडे ? और देवतालोग इतना भी काम न करें ? कभी २ मूर्तिपूजाको सिद्ध करनेके लिये शिलालेख और पुस्तकोंका प्रमाण दिया जाता है; परन्तु इन प्रमानेंामें कदाचित् कोईएकआध ही विश्वास योग्य होते हैं कारण कि उस उस पंथके चलानेवालोंने अपनी उन उन पुस्तकोंमें पुरानी तिथि लिखमारी और अपने शिष्योंको १००–२०० वर्ष तक जाहिर न करनेकी आज्ञा दी, इस लिये कि उस वक्तके मनुष्य इस मतको प्राचीन मानें. ऐसे अनेक उदाहरण हैं. चलो हम यह मान भी ले कि प्राचीन समयमें मूर्ति थी तो इसी तर्क पर उसे सच्चा मान लेना तर्कशास्त्र [Logic] का दुरुपयोग है. एक अरेबि-

यन लेखकने लिखा है कि जो कोई जादुगर मुझे कहे कि तीन, दससे जियादा होते हैं, और इसे साबित करनेके लिये मैं लकडीका सांप बना देनेको तैयार हूं; इस बातपर मुझे ताजुब होगा सही परन्तु तीनको दससे जियादा कभी न मानूंगा. सच है लकडी का सांप हुआ इससे कुछ तीन दससे जियादा न हुए. मूर्ति पहले थी इससे वह सच्ची न हो गई. स्वयं महावीर स्वामीके जमानेमें 'गोसाला' था इससे क्या गोसालाका धर्म सच्चा हो गया? उस समय भी पाखंडी थे. तो क्या वे प्राचीन हैं इससे मानने योग्य कहे जायगे? बडी आश्चर्यकी बात है. मूर्ति-पूजा यदि भगवानकी आज्ञा होती तो भगवानकी आवेहूब स्टेच्यू (Statue) क्यों किसीने न बनाया होता?

कितनेही लोग एसी दलील पेदा करते हैं कि खटाईको देखकर मुखमेंसे पानी पडने लगता है. शृंगार की गई स्त्रियोंकी तसवीर देखनेसे कामविकार उत्पन्न होजाता है वैसा ही वीतराग भगवानकी मूर्तिको देख-

कर वैराग्य उत्पन्न होता है. ऐसा कहना विश्व नियमसे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है, क्योंकि विषय तो इस जीवके साथ अनन्त कालसे लगे हुए हैं और इसीसे एक रह स्वभाव ही वनवैठे है (' Habit is Second nature आदत दूसरी प्रकृति है.) स्त्रीका शब्द सुनतेही–सुन्दर चित्रपर निगाह पडतेही –स्त्री सम्वन्धी वातें सुनते न सुनते भी काम उत्पन्न होता है और वैराग्य वडे २ उपदेशोंका उपदेशसुनते रहने पर भी, दुःखोंपर दुःख पडनेपर भी, महात्माओंके दर्शन करनेपर भी सहजमें नही होता, इसके लिये तो क्षयोपशम चाहिए. यह तो अपूर्व वात है. खटाई देखनेसे मूखमें पानी छूटने लगता है परन्तु मीठाइ देखकर नही. झूठेकी संगतिमें आदमी झूंठा वन जाता है परन्तु महात्माकी संगतिसे एकाएक महात्मा नही हो जाता. हां इस वातसे इन्कार नही किया जा सकता कि 'प्रत्येक वुद्ध' को वाह्य कारणोंसे वैराग्य उत्पन्न अवश्य होता है. परन्तु इससे यह कभी सिद्ध नही होता कि वैराग्य पैदा कर देनेवाले का-

रण 'पूज्य' है. भरतेश्वरने अरीसा भवनको, करकंडूने वृषभको, दमूहने स्तम्भको, नमीराजाने चूडीको, नीगाई राजाने आमको वन्दन किया हो ऐसा जैनशास्त्रमें कही भी नही लिखा; प्रत्युत श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रमें पांचवे संवरद्वारमें प्रतिमा (चेइय) और पुतली: दोनोंको देखनेकी, उनके विचार करनेकी, उनमें सन्तोष माननेकी, उनपर प्रीति रख मोहीत होनेकी मनाई की है (पढो, वितियं चखुइदियण........नसइंच मइंच त्तथ कुजा) इतना होने पर भी कोइ २ तो यहां तक कह डालते हैं कि—सामायिकमें बेठे हों तो भी उठकर पुष्पादिकसे मूर्तिपूजा की जा सकती है. जहांपर ऐसे २ वहमोंने अपना गहरा घर कर लिया हो वहां पर कौनसा तर्कशास्त्र काम कर सकता है? जब शास्त्रोंके देखनेमें ही दोष माना जाय तब शास्त्रोंके प्रमाणोंका कौन भाव पूछे? जब किसी भी तरह मतको फैलानेका उद्देश मान लिया जाय तब न्याय और अन्यायको देखनेकी किसे फुरसत? ऐसा नहीं हो तो

गुरुके लक्षणको भली भांति जाननेवाले जैन अकिंचन-निर्ग्रन्थ गुरुके सत्कारमें रुपया पैसा क्यों देवे ? और उनके-गुरुके स्वर्गवास कर जाने पर उनके छोडे हुए हजारोंके माल पर क्यों किसी साधुको वारिस करें ? परन्तु जब तक मनुष्य मतके मदसे मतवाला है तब तक सत्यको नहीं ग्रहण कर सकता. कंचन और कामिनीका सर्वथा जिसने त्याग न किया हो वह 'साधु' कहा ही नही जा सकता-उसे गुरु होनेकी सर्वथा योग्यता नही है इस मुख्य नियमको भी क्या उपनियमकी आवश्यकता है ?

समझदार आदमी अपने मनमें ही विचार कर लेंगे कि भगवानकी मूर्ति सुख देनेवाली हो तो सदा और सब जगह सुख देनेवाली ही होनी चाहिए. परन्तु नहीं; मूर्तिका उपदेश करनेवाले कहते हैं कि "पश्चिमको ओर मुख रखकर पूजा करनेसे चोथी पीढीमें कुलक्षय हो जाता है, दक्षिणमें मुख कर पूजनेसे सन्तति नही होती, अग्निकोणमें मुख कर पूजा करनेसे सम्पत्तिका नाश हो जा-

ता है और नैऋत्य कोणमें मुखकर पूजा करनेसे परिवार की खैर नहीं रहती, इत्यादि" जिस भगवानकी पूजासे कुल क्षय हो, धनका नाश हो वह भगवान किस कामका ?

संस्कृत और मागधीके जाणनेवाले पुरुषोंने धर्मके नामसे कैसा उपदेश किया है इसको वरावर समझ देनेके लिये नीचे लिखे हुए उदाहरण आवश्यक हो पडेंगे।

(१) 'श्राद्धविधि' ग्रन्थमें लिखा है कि– "सांठेकी खेती, समुद्र, योनिपोषण, और राजाकी कृपा फौरन दरिद्रताको मिटा देते हैं; सुखकी इच्छा करनेवाले अभिमानी मनुष्य चाहे राजसेवाकी भले ही निन्दा किया करे परन्तु राजसेवा किये विना स्वजनका उद्धार और शत्रुका संहार नहीं हो सकता." एक मुनि शत्रुके नाशकी युक्ति बतावे और योनिपोषणकी हिमायत करे यह क्या जैनशास्त्रके अनुसार ठीक हो सकता है ?

(२) जिनदत्तसूरि कृत "विवेकविलास" में से नीचे लिखे हुए उदाहरण काफी होंगे:–

(अ) आसने वाथ शय्यायां
जीवांगे विनियोजयेत् ।
जायन्ते नियत् वश्याः
कामिन्यो नात्र संशयं ॥

स्त्रीको वश करनेके लिये यह कामिनीके त्यागी महाराज बेचुक युक्ति बतलाते हैं कि जिस ओरकी नाक चलतीहो उस ओर स्त्रीको आसनपर या बिछोनेपर बिठावे तो वह अवश्य वश होतीही है." "नात्रसंशयः" की बहार तो देखो कि लिखने वालेने इसका पूरा अनुभव ही कर रक्खा हो ऐसा सूचित करता है.

(ब) दहनास्वर चल रहाहो उस समय पुरुषको चाहिए के विलासके वचनोंसे स्त्रीको कामविकार उत्पन्न करे और बाद इस प्रकार संभोग करे कि स्त्री इन्द्रीयके कमलाकार मूलदेशमें वीर्य सम कालमेंही मिले ऐसा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है."

(क) "अमृतका स्थान मसलनेसे स्त्रियों अवश्य वश हो जाती हैं. खासकर जो गुह्यस्थानमें अमृतकला आई हो तो उसे मस-

लने फौरन ही स्त्रियां वश होती है. ”

(ड) अलग २ ऋतुओंमें कैसे सुख पाना —मजे उडानी इसके बारेमें यही महात्मा लिखते हैं किः—“ ग्रीष्मऋतुमें अपनी स्त्री रूपी बेलके स्पर्श करनेसे तापको शान्ति होती है और जलसे भीजे हुए पंखेकी हवा बडा ही आनन्द देती है. हेमन्त ऋतुमें सुगंधित पदार्थ लगाये हुए पुष्ट और बडे २ स्तनवाली मनोहारिणी युवती और कोमल तथा उष्ण स्पर्शवाली शय्या शीतको दूर भगा देती है ”*

आगे चलकर इसी पुस्तकमें स्त्रियोंके लक्षण, बेटा या बेटी होनेके चिन्ह वगैरा २ लिखे हैं. अब इसे जैनशास्त्र कहा जावे या कोकशास्त्र, इसे साधारणसे साधारण मनुष्य भी समझ सकता है. इतना ‘ सॅम्पल ’ बता-

---

* हम यह क्वॉटेशनके बारेमें पाठकगणसे शत वार क्षमा चाहाते हैं. जिस बात साधु कहलानेवालेको प्रगट करनेमें शर्म न आई उस बातको नमूनाके तौर पर प्रगट करनेमें भी हम शर्मकेमारे मर जाते हैं.

नेमें भी मुझे शर्म आती है. क्या हम ऐसे पुस्तकोंमें श्रद्धा रख सकते हैं ?

मूर्तिपूजाके और दूसरी तरहके ग्रन्थ ऐसे ही मनुष्योंने घडे हैं. ब्राह्मणोंमेंसे* जैनोंमे आये हुए पण्डितोंने संस्कृत भाषाके ज्ञानके जोरसे ऐसी पुस्तकें बनाई. आज जैसे थोडी अंग्रेजी पढे हुए मनुष्यकी सामान्य मनुष्योंमें पूछ होती है और बडा आदर सन्मान होता है वैसे ही उनके बारेमें भी हुआ.

संसारी मनुष्यको संसार व्यवहारकी बडी जुरुरत है इसमें कोई सन्देह नही है परन्तु इससे यह नही सिद्ध होता कि ऐसा

---

*ब्राह्मणोंमें वैयाकरणी नैयायिकादि हजारों मारे मारे फिरते थे उनका कोई नही पूछता था जब उन्होंने देखा कि जैनियोंमें खूब चलती है तो उन्होंने जैनमार्गका पक्ष किया और इस मतके लिये सैंकडों पद्य-मय विधि ग्रन्थ बना डाले. जैन उनकी विद्व-त्ताको पवित्रता समझने लगे और कइएक बुझकर भूलमें पडे; क्योंकि उन्होंने जैसे हो वैसे मत बढानेका इरादा रक्खा था.

उपदेश त्यागीको ही करना चाहिए. संसारमें तो रोटी पकाना-मैथुन सेवन करना आदि हजारों क्रियायें हैं तो क्या सब बातके उपदेशकी साधुको ही आवश्यकता है? जो है तो रसायणविद्या, यंत्रविद्या, व्यापारकला, खगोल, भूस्तर, वाद्य आदि विद्या कलाकी भी जुरूरत है-बल्कि ज्यादा जुरूरत है.

इन आचार्योंमेंसे किसीएकने भी ऐसा उपदेश नहीं किया जिससे उन्नति बढती. परन्तु जिसका ज्ञान ही न हो उसका उपदेश कैसे किया जा सकता है? सच कहें तो यह है कि ऐसा उपदेश करना संसारी मनुष्यका काम है. दुनिया चाहे रसातल हो जाय त्यागी को यह विद्या सिखलाना किसी भांति योग्य नही है.

समयके प्रभावसे ऐसी बीती कि ऐसे वैसे चमत्कारोंमें ही साधु पुरुष धर्म बताने लगे. किसीने थाली उडाकर चन्द्रमा बतलाया. किसीने कुछ कौतुक किय। और किसीने कुछ-बस इसोंमें अपने२ धर्म (नहीं, मत) की उत्तमता मंजूर कराई. किसीने

विधिएँ—वे भी एक दो नहीं—अनन्त बना डाली और संसारके छोटेसे छोटे कामके साथ भी धर्मका सम्बन्ध जोड दिया. यह मायाजाल यहां तक फैला कि इसमें फँसे हुए मनुष्य हिंसा और धर्मका भेद बताने वाले मनुष्यकी जान लेने तक तैयार होने लगे. जो मिथ्यात्वकी इस चरम उन्नतिके समयमें बहादूर और न्यायी अंग्रेज सरकारका राज न होता तो मूर्तिके न पूजनेके अपराधमें और त्यागी मुनियोंके खजानेकी ओर शंका करनेके दोषमें सैंकडों गरीबोंको फांसीपर लटकना पडता !

इस तरह कितनेही मत मनुष्य जातिको अंधेरेमें धकलते हैं और जो अंधेरेमें हैं उन्हें बहार नहीं निकलने देते, इतनाही नहीं बल्कि मनुष्यत्वके जो मुख्य चिन्ह सरलता और बन्धुभाव हैं उन्हें देशनिकाला कर देते हैं. यह हुई 'मत' की बात; अब जैन 'धर्म' की सुनिये, जिससे 'मत' और 'धर्म' का भेद मालूम हो जावे.

(१) 'जैनधर्मी मनुष्य जैन सिद्धान्तको

सत्य मानते हैं, यही क्यों, उनके अनुसार अपना चरित्र रखते हैं और जितने अंशमें आचरण नहीं कर सकते उसके लिये चित्तमें दुःखी रहते हैं.

(२) 'जैनी' सच्चे जि से मानता है कि जैन सिद्धान्त सत्य है (परन्तु वह उसके अनुकूल चल नहीं सकता.)

(३) 'जैनमती' जैन धर्मके सिद्धान्तों-को स्वयं जिस तरह समझा हो वैसे ही चाहे जिस तरह (योग्य रीतिसे या अयोग्य रीतिसे) फैलानेमें ही धर्म मानता है और 'अपना कक्का सच्चा' करवाने के लिये हिंसा, चोरी, झूठ, जुल्म आदि कोई काम करना पडे उसे भी अधर्म नहीं मानता.

(४) 'जैनाभासी' जैन सिद्धान्तोंका नाश करनेवाले हैं; जैनका भेस कर जैनि-योंकी आंखोंमें धूल झोंकनेका यत्न करते हैं. जैनधर्मी, जैनी, जैनमती और जैनाभा-सीयें जमीन-आसमानका फरक है; इस बा-तको समझने वाले बहुत कम है और बहुत

ही इसको जाननेकी परवा करते हैं.

इतना लिखनेके बाद मैं अपने मूल
लपर कुछ लिखता हूं: " स्थानकवासी
साधुमार्गी जैनधर्म इस नामसे प्रसिद्ध धर्म
च्चा है या क्या ? " मैं भी इसी वर्गका
इससे पाठक मुझे इसका पक्ष करता हुआ
ं यह सहज है; परन्तु यह लेख लिखती
ह मैंने निश्चय किया है कि किसीका पक्ष
किसीकी विरुद्धता नहीं करुंगा और
पने निश्चयको प्रभुकी साक्षीसे पालन क-
गा; फिर मेरी समझमें भूल हो यह एक
सरी बात है; पाठक पक्षपात न खियाल करें.

स्थानकवासी, देरावासी, दिगम्बरी,
ामानन्दी, क्रिश्चिअन नाम मात्रका नाश है
और जबतक नाम है तब तक 'पूर्ण सत्य'
नहीं कहा जा सकता. 'धर्म' सत्य है परन्तु
जब धर्मके नामसे अलग २ और भूलभरी
मानताऐं प्रचलित हो गई तब 'जैनधर्म'
नाम देना पडा; और जैनधर्ममें भी भगवा-
नकी आज्ञाके विरुद्ध मनमानी वातें होने
लगी तब "साधुमार्गी जैन" नाम रखनेकी

जुरूरत पडी. यह धर्म कुछ नवीन बातें बता-
नेका दावा नहीं करता. फिर यह धर्म पालन
करनेवाले कुछ स्थानक (उपाश्रय) में नहीं
बैठे रहते परन्तु उनकी आत्मायें स्थानकमें
(जहां पवित्रात्मा साधु लोग रहते हैं) रहती है
और इसीसे 'साधुमार्गी' या 'स्थानकवासी'
नाम धर्मका रक्खा गया जान पडता है.
जैसे श्वेताम्बरी कहनेसे यह नहीं मानाजाता
कि इस मतको माननेवाले सब सफेद कपडे
पहनते हैं, बल्कि वे श्वेत वस्त्र धारण करने-
वाले धर्मगुरुको मानते हैं अर्थात् उनके धर्म-
गुरु श्वेत वस्त्र पहनते हैं.

'साधुमार्गी' अर्थात् 'साधुता [sanctity]
ही मार्ग है जिनका' ऐसे लोगोंको 'ढूंढीआ'
भी कइ लोग कहते हैं. इस शब्दकी बडी
निन्दा हुई है और पूजा भी हुई है—बुराइ
हुई है और तारीफ भी हुई है. परन्तु इ-
सका रहस्य यह है:—

" ढूंढत ढूंढत ढूंढ लिया सब,
" वेद पुराण कितावमें जोई;
" जैसे महीमें मांखण ढूंढत,

" ऐसो दयामें लियो है जोई.
" ढूंढत है तब ही चीज पावत,
" बिन ढूंढे नहि पावत कोई;
" ऐसो दयामें ही धर्म ढूंढो,
" जीवदया बिन धर्म न होई."

चारों ओर निगाह डाल कर विचार करनेसे जो कुछ सत्य मालूम हुआ उसे ढूंढ कर-हेर कर जो कुछ उपदेश किया गया वह 'ढूंढिया धर्म' (Puritan) के नामसे प्रसिद्ध हुआ. ढूंढनेसे ही अच्छी २ औषधियां प्रकट होती है, ढूंढने पर ही कुम्भकारकलाका आधार है. ढूंढनेसे ही इतिहासका पत्ता चला है; इसी ढूंढनेने ढूंढिया धर्मको जन्म दिया ! 'जन्म दिया' यह कह कर मैं इस धर्मके विषयमें अपमान कर रहा हूं, क्यों की सत्य तो सदा ही रहता है, वह कभी उत्पन्न नहीं होता; अलबता वह ढंक जाता है, उसे कोई न कोई महापुरुष निकाल कर जगतमें प्रकट कर देता है.

जैन धर्म रुपी अग्निको जब 'जैन म-

ती ' और ' जैनाभासियों ' ने मिथ्यात्व रूपी राखसे ढंक दिया तब लोहखंडके मजबूत हाथवाले मनुष्यकी जुरूरत पडी. वेद मतानुयायियोंमें सत्य कहा है कि ' जब २ दुनियामें अन्धकार (धर्मग्लानि) होता है तबतब अवतार उत्पन्न होते हैं. " इसी नियमके अनुसार जैनोंमें १ वीर उत्पन्न हुआ. उसने जैनमति और जैनाभासीयोंका राखका आवरण फुंक कर उडा दिया और अग्निको प्रकट कर दिखाया. इसकी फुंक ऐसी प्रभावशाली थी कि देखते ही देखते उसका असर पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण चारों ओर पडा और जैनमति और जैनाभासीयोंका आध भाग शुद्ध सुवर्णका ग्राहक हो गया. ×

× लाखों साधुमार्गीयोंमेंसे १-२ मनुष्योंको संसारी लालच दे कर जो कोई जैनमती या जैनाभासी अपनेमें मिला लेते हैं वे फूल कर कुप्पा हो जाते हैं. परन्तु वे यह नहीं सोचते हैं कि उन्के लाखों मनुष्योंको उत्तममार्गी बना दिया उन्हींमेंसे एक-दो को वापस खींच लेनेमें खुशीकी बात क्या है ?

यह तो हुआ परन्तु इससे ईर्षा उत्पन्न हुए विना रह न सकी. स्वयंवरमें अनुपम सुंदरीको पानेवालेसे और २ क्षत्रिय ईर्षा और शत्रुता कर बैठते थे यह कुछ इतिहासप्रेमियों से छिपा हुआ नहि है.

साधुमार्गी या स्थानकवासी जैन धर्मकी शीघ्र की हुइ जीतने ऐसा ही परिणाम उत्पन्न किया और इससे यह विजय ' मूल्यवान विजय ' (dear bought) हो पडा. धर्मक्षेत्रमें उनसे स्पर्धा करनेवाले उनके सहोदर नीचसे नीच शब्दोंसे उनकी निन्दा करने लगे और ऐसी तजवीज तक करने लगे कि दुनियामें इस वर्गके मनुष्योंको घृणासे देखा जाय. इसका परिणाम (साधुमार्गियोंमें उन्नति-अवनतिके नियमानुसार उत्साही मनुष्योंकी कमी होनेसे) यह हुआ कि आज यह ज्योति फिर आच्छादित हो गई है, जिसे फिर कोई वीर उत्पन्न हो कर प्रगट करेगा.*

---

* यह शब्द निकलते ही भलदृष्टि हुई, इससे अच्छी आशा की जा सक्ती है.

जिसको निन्दा करनी होती है वह अच्छी हे अच्छी वस्तुकी भी निन्दा करता है. (निन्दक मति का यही दुःख है. निन्दककी बुद्धि कलुपित–भ्रष्ट होती है. आगे चलकर उसमें इतनी शक्ति नही रहती कि सत्यासत्यको समझ भी सके)* स्थानकवासी जैन धर्मके निन्दकोंको जब और कुछ निन्दा करनेको नही मिला तब इस धर्मकी उत्तम दयाके सिद्धान्तकी ही हँसी करना शुरू किया और दलील देने लगे कि 'दया' एक सद्गुण है परन्तु स्थानकवासी उसे हदके बाहार खींचकर दुर्गुण बनाते हैं

---

* निन्दाके भयके कभी अपने कर्त्तव्य से न चुकना चाहिए इसी बातको एक महानुभावने अपने "विद्वद्विपाद हरस्तोत्र" में लिखा है "निन्दायानः किं विपादः प्रभोस्यान्नृणां धर्मोनिन्दकानां हि निन्दा" अर्थात् हे प्रभो निन्दासे हमें क्या विपाद होवे? क्यों कि निन्दकोंका तो धर्म ही निन्दा है; यदि वे निन्दा न करें तो निन्दक ही कैसे कहेलाय? (अनुवादक).

यह कहना ही मिथ्या है और धर्मके मूल सिद्धान्तसे सर्वथा विपरीत है. सत्यकी हद ही नही होती, फिर उसे हदवाहर लेजानेका कुछ अर्थ ही नही है. शील सद्गुण है; क्या इसमें २–४ स्त्रीयोंकी छुट रखना वाजवी कहा जायगा ? हां, जो महा व्यभिचारी है उसके लिए कदाचित् कोइ ऐसी नियमीत व्यवस्था कर दे परन्तु क्या इसमें कोइ सर्वथा ब्रह्मचारीको सद्गुणकी हद वहार जानेका दोषी वना सकता है ? इसी तरह दया सद्गुण है तो सदा और सर्वथा सद्गुण ही है और जितने अंशमें उसका पालन न हो उतने ही अंशमें उस सद्गुणकी कमी है. सत्पुरुषोंके हृदयमें इस कमीके लिये खेद भी होता है.

थोडी देरके लिये ऐसा होनेपर भी सिर्फ दलील करनेको यह मान भी लें कि स्थानकवासी जैन या इनके साधु दयाको हदवार ही खींचते हैं और उसे दुर्गुणमें परिणत करनेकी भूल करते हैं तोभी यह भूल सन्मार्ग की ओर है–यह भूल निरपराधी है. इनके साधु स्त्री और श्री (द्रव्य) को स्पर्श भी नही करते; केवल इतना ही उनको निर-

पराधी साबित करने को बस है. इससे उन्हें किसी को ठगनेकी कोई आवश्यक्ता नही रहती और इसीसे वे औरोंकी तरह धर्मके नामसे द्रव्य इकट्ठा नही करते और न पैसा उपदेश ही करते हैं. जो धर्मके नामसे मैला इकट्ठा कर सकते है वे उस पैसेको काम पडेसे अपने लिये भी खर्च कर सकते हैं, और ऐसा करनेकी आदत पडने पर पैसा इकट्ठा करनेको झूंठ भी बोल सकते हैं, चोरी भी कर सकते हैं, स्त्रियोंसे संसर्ग भी बढा सकते हैं. पैसेके छूनेसे उत्पन्न होनेवाले ये सब दोष स्थानकवासीसाधुओंसे हजार कोस दूर रहते हैं और इसीसे वे बिल्कुल निर्दोष प्राणी हैं. ऐसेही पुरुष निस्पृह होते हैं और सच बोलनेकी, सच्चा उपदेश और संमति देनेकी हिम्मत रखते हैं. ऐसे ही पुरुष मूर्खता और पाप में गडी हुई दुनिया को अपने उपदेश और सलाहसे निकाल सकते हैं. इन्हीं कारणोंसे स्थानकवासी जैनमुनि संसारको आशिर्वाद रूप हो जावें इसमें क्या आश्चर्य, या क्या सन्देह ? इस बातको,

थोडे समयमें ही स्थानकवासी साधुओंके अ-
नुयायोंकी संख्याका लाखों पर पहुंच जाना
और भी पुष्ट करता है. जो ये साधु अपने
शास्त्रोंको महनतके साथ पढे और एक आध
"ट्रेनींग कालेज" का सुभीता पाकर सू-
क्ष्मसे सूक्ष्म अंश शास्त्रोंका समझ सकें तो
वे जगतके बडे भागको तारनेमें समर्थ हो
जावे. इस बातको स्वीकार न करना गैर-
इंसाफी होगी कि अब अब कुछ साधुपनका
बंधन शिथिल होता जाता है. परन्तु यह भी
निधडक-बिना किसी भय संकोचके-कह
देना अयोग्य नही है कि यह शिथिलता दंड
देने योग्य है. आचार्योंको चाहिए कि वे
अपने शिष्यों पर पूरी २ निगाह रक्खें और
जब देखें कि किसी में किसी तरहकी
शिथिलता आगई तो वे फोरन उसे दूर
करावें. जो इस सूचनापर इस पंथके प्रत्येक
आचार्य अमल करें तो फिर स्थानकवासी
जैनधर्म सर्वमान्य होनेमें कुछ सन्देह नही
रहता. 'मुक्तिफोज' कबीर पंथी साधु वगैरा
से अवश्य उत्तम और जियादा काम कर
सकती है.

जैन स्थानकवासी, ढूंढिया, दयाधर्मी, साधुमार्गी वगेरा नामसे इस पंथके मनुष्य कहेजाते हैं परंतु ये नाम कुछ, सूत्रोंमें नही हैं. ये नाम तो गुणसूचक है. यह पंथ कब उत्पन्न हुआ (सच तो यह है कि इसका जन्मही नही हुआ, सदाका है परंतु अभी प्रसिद्धिमें आया) इस बातको जानने के लिए अब इतिहासको देखें. इतिहास क्षेत्रमें आनेके पहले मैं इस बातको मंजूर करता हूं किनमैं कोई बडा इतिहासवेत्ता हूं और न बडा भारी खोज करनेवाला; परंतु धर्मसंबन्धी अभ्यासके समयमें जो कुछ मेरे पढनेमें और सुननेमें आया है उसीका साटयहांपर दूंगा. इसमें भूलें भी होनी बहुत कुछ सम्भव है और ऐसी भूलोंको कोइ प्रेमपूर्वक सूचित करेगा तो मैं उनका कृतज्ञ हूंगा, (परंतु मैं यह पहले ही कहदेता हूं कि मैं वादविवाद में उतरनेको राजी नही हूं.)

प्रकरण २.

श्री महावीर स्वामीके समयसे लोंकाशाहके समय तकका संक्षिप्त दिग्दर्शन.

जब चौथे आरेके ७५ वर्ष बाकी रह गये थे तब भरतक्षेत्रके मध्यखंडान्तर्गत बिहार प्रान्तके पूर्वकी ओर कुंडलपुरकी पास क्षत्रिय-कुंड नामक गांवमें सिद्धार्थ राजाकी त्रिशि-लादेवी नामकी पटरानी की कुंखसे अन्तिम तीर्थंकर श्रीमान् महावीर स्वामीका जन्म हु-आ (चैत्र शुक्ल १३ मंगलवार उत्तरा फा-ल्गुणी नक्षत्रके पहले पायेमें विक्रमसे ५४२ वर्ष पहले यह हुए हैं.) इन्होंने ३० वर्ष गृ-हस्थाश्रममें रहकर मार्गशीर्ष वुद १० याने अमान्त मासके हिसावसे कार्तिक वुद १० के दिन दीक्षा ग्रहण की उस समय चौसठ इन्द्रोंने तथा श्री महावीरके भाई नन्दीवर्धनने बडी धुमधामके साथ दीक्षा महोत्सव किया. साढे बारह वर्ष तक उन्होंने अनेक कष्ट सहे और वैशाख शुक्ल १० के दिन उन्हें केवलज्ञान-

की प्राप्ति हुइ. सर्वज्ञ होनेके बाद वे सब जी-
वोंपर समान दयाभाव धारी होकर जगह २
घुमकर सदुपदेश देने लगे, जिसका वर्णन
उववाइ सूत्रमें किया है. इनके उपदेशसे ११
गणधर, १४००० साधु और ३६००० सा-
ध्वी बने; इनमेंसे ७०० केवल ज्ञानी हुए तथा
१५९००० श्रावक ३१८००० श्राविका हुए.
इस तरह भव्य जीवोंका उद्धार करते हुए
३० वर्ष तक कैवल्य प्रवृज्याका पालनकर
पावापुरी नगरी के हस्तिपाला राजाकी शा-
लामें कार्तिक वदि अमावास्याके दिन स्वाती
नक्षत्रमें सब कर्मोंका क्षयकर मोक्ष धामको प-
हुंचे; इसी समयसे जैनोंमें वीर संवत् चला,
जिसे २४३५ वर्ष हो गये.

चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर देव
चौथे आरे के अन्त समयमें हुए उनके का-
योत्सर्गके बाद तीन वर्ष और साढे सात म-
हीने ही चौथा आरा चला बाद पांचवां आ-
रा बैठा—चतुर्थ काल पुरा हुआ और पंचम
काल लगा.

महावीरके ४७० वर्ष बाद विक्रमादित्यने आपना संवत् चलाया जिसे १९६५ वर्ष हो गये, इससे सिद्ध होता है कि आजसे ४७०+१९६५=२४३५ वर्ष पहले तो भूत भविष्य और वर्तमानके जाणने वाले-सब संशयोंके दूर करनेवाले पुरुष संसारमें प्रत्यक्ष मोजूद थे और किसीको कर्म सिद्धान्त, दया-भाव और जैन धर्मपर शंका करनेका कोई कारण ही नहीं था. हां, कुज दुष्कर्मी जीव पहले भी थे और आयंदा भी रहेंगे यह बात दूसरी है.

कहा जाता है कि महावीर देवको वन्दन करनेको शकेन्द्र आया था उसने एकदफे पूछा कि " हे भगवान ! आपके जन्म नक्षत्रमें तीसवां भस्मग्रह २००० वर्षकी स्थितिका वैठा है यह क्या सूचना देता है ? " भगवानने उत्तर दिया कि " २००० वर्षतक श्रमण-निर्ग्रंथ-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाकी उदय पूजा नही होगी. इस भस्मग्रहके उतर जाने वाद फिर धर्म चमक उठेगा और पूज्य पुरुषोंका आदर सत्कार होगा. " यह भविष्य

कथन विल्कुल सत्य होता दिखाई दे रहा है. क्यों कि महावीर निर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रम संवत् चला और विक्रम संवत् १५३१ में लोंकाशाहने जैन धर्मके तत्वोंको ढूंढ निकाला-अर्थात् २००१ वें वर्षमें लोंकागच्छकी उत्पत्ति हुई और उत्पत्ति होनेके साथ ही चारों ओर फैला और उसके उपदेशक जगह जगह पूजा सत्कार पाने लगे ! थोडे ही समयमें उस धर्ममें लाखों आदमी हो गये, इससे ज्ञान होता है कि भगवानकी वाणीके अनुकूल लोंकाशाहका स्थापित किया हुआ स्थानकवासी या साधुमार्गी जैन धर्म बिलकुल सच्चा है इसमें कोई सन्देह नही हैं. इसको न मानना न्यायशास्त्रको न मानने जैसा है-लॉजिकका तिरस्कार करने तुल्य है.

श्री महावीरके बडे शिष्य गौत्तम ऋषिको कार्तिक शुक्ल १ के दिन प्रभात समयमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और वे १२ वर्षतक तप कर कर्मोका नाश कर मोक्ष धामको गये.

(१) श्री गौत्तमको जिसदिन केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई उसदिन श्री महावीरके पाट

पर पांचवे गणधर सुधर्म स्वामीको विठाया गया. ये सुधर्म स्वामी कोलक गावके वैशायन गोत्री थे. इन्हों ५० वर्ष गृहस्थाश्रममें रहे. ३० वर्ष भगवानकी सेवामें रहे, १२ वर्ष तक गुप्त रीतिसे आचार्य पद पर रहे और फिर केवलज्ञानी हो ८ वर्षके बाद (महावीरके २० वर्ष बाद) मोक्ष धामको गये.

(२) इनके बाद जम्बु स्वामी पाटपर विराजे. इनका जन्म राजगृह नगरीके काश्यप गोत्री ऋषभदत्त सेठकी धर्मपत्नी धारिणीकी कूखसे हुआ था. १६ वर्षतक गृहस्थाश्रम चलाया; वाद ८ स्त्री और नव्वानवे करोडका मालमत्ता छोड ५२७ मनुष्योंके साथ दीक्षा ली और ८० वर्षकी अवस्थामें मोक्षको पधारे. श्री महावीर स्वामीके मोक्षको जानेके बाद १२ वर्षतक गौत्तम स्वामी ८ वर्षतक सुधर्म स्वामी और ४४ वर्ष तक जम्बु स्वामी केवलीके पदसे सुशोभिता रहे. इनके वाद कोइ केवली उत्पन्न नही हुआ—अर्थात् केवल ज्ञानका विच्छेद हुआ.

जम्बु स्वामीके मोक्षगमनके समय(वि-

क्रमसे ४०६ वर्ष पहले) दस बोलका विच्छेद हुआ (१) मनःपर्यवज्ञान (२) परमावधिज्ञान (३) पुलाक लब्धि (४) आहारक शरीर (५) कैवल्य (६) क्षायक सम्यक्त्व (७) जीन कल्पी साधु (८) परिहारविशुद्ध चारित्र (९) सूक्ष्म संपराय चारित्र और (१०) यथाख्यात चारित्र ये दस बोल जाते रहे. ऐसा होनेपर भी पाखंडी यहां तक कहदेनेकी हिम्मतकर बैठते हैं कि हम केवल ज्ञानी है और आश्चर्य इस बातना है ऐसोंको सूत्रोंका आस्तिक मध्यम वर्ग नही परन्तु विचारस्वातन्त्र्यका पक्षपाती सुधारा हुआ वर्ग ही मानने लग जाता है ! हिप्नोटिझम और मेस्मेरिझमकी विद्याके जानने वाले कहते है कि यह विद्या सुधरे हुए मनुष्योंपर अच्छी तरह अजमाई जा सकती है. और धर्मके विषयमें भी ऐसा ही हुआ है सुधरे हुए मनुष्य धर्म सम्बन्धी पालिस किये हुए ढोंगोंमें बहुत जल्द गिरफतार होजाते है. भवतु ! हमें ऐसे सुधरे हुए लोगोंसे कुछ लेना देनी नही है हम तो फिर अपने इतिहासकी और झुकते है.

(३) जंबु स्वामीके बाद प्रभव स्वामी हुए. ये वीर संवत् ७६ में देवलोकको गये फिर (४) स्वयंभव स्वामी ९८ वें में (५) यशोभद्र स्वामी १४८ में और (६) संभूतिविजय १५६ वें वर्षमें देवलोक हुए. इनके बाद:-

(७) भद्रबाहु १७० वें वर्षमें.
(८) स्थूली भद्र २१५ ,,
(९) महागिरी स्वामी २४६ ,,
(१०) सुहस्ती स्वामी २६५ ,,
(११) सुप्रतिबुद्ध ३१६ ,,
(१२) इन्द्रदीन
(१३) आर्यदीन } ३१३-५८४ ,,
(१४) वयर स्वामी
(१६) व्रजसेन स्वामी ६२० ,,

में देवलोक गये. अब इनमेंसे १४ वें तकका संक्षिप्त परिचय यहां पर देते है:-

(२) प्रभव स्वामी:-विंध्य पर्वतके पास जयपुर नाम नगरके राजा विंध्यके ये बेटे थे. राजाके साथ विरोध होजानेसे ये बाहर निकले थे, इनका गोत्र कात्यायन था. ३० वर्ष तक गृहवास कर इस वीरने दीक्षा ग्रहण

की थी. वीरके ७५ वें वर्षमें इसने अपना १०५ वर्षका आयु पूर्ण किया (विक्रमके ३९५ वर्ष पहले)

(४) स्वयंभव स्वामीः—राजगृहके इस वात्स्यायन गोत्री महाशयने २८ वर्ष गृहस्थाश्रमका पालनकर दीक्षा ली और ११ वर्ष पश्चात् युग प्रधानकी पदवी प्राप्त की और ६२ वर्षकी उम्र भोग ९८ वें वीर संवत्में स्वर्ग-वास किया (वि. पू. ३७२ वें वर्षमें.)

(५) यशोभद्र स्वामीः—तुंगीयायन गोत्र; २२ वर्ष गृहवास, १४ वर्ष व्रत पर्याय, ५० वर्ष युग प्रधान पदवी ८६ वर्षकी उम्रमें स्वर्ग-वास (वीर संवत् १४८ और विक्रम पूर्व ३२२ वर्ष.)

(६) संभूति विजय स्वामीः—माढर गोत्र ४२ वर्ष गृहवास, ४० वर्ष व्रत पर्याय ८ वर्ष युग प्रधान पदवी, ९० वर्ष उम्र (वीर संवत् १५६ वि. पू. ३१४ में) स्वर्गवास.

(७) भद्रबाहु स्वामीः—प्राचीन गोत्री ४६ वर्ष गहवास, १७ वर्ष व्रतपर्याय, १४ वर्ष युग प्रधान पदवी, ७६ वर्षकी उम्रमें (वीर

संवत् १७० वि. पू. ३००) स्वर्गवास. इनके भाईका नाम वराहमिहिर था. इन्होने जैन साधुपन छोडकर "वराह संहिता" बनाइ. मुझे मिली हुई पुस्तकोंमेंसे एकमें लिखा है किः—ये मुनि अखीरी चौदह पूर्वधारी थे. इनके समयमें अकाल पडनेसे चतुर्विध संघको बडा संकट हुआ. उस समय पाटलीपुत्र शहरमें श्रावकोंका संघ इकठ्ठा हुआ और सूत्रोंके अध्ययन आदिका निश्चय किया तो कुछ फेरफार जान पडा. ऐसा देखकर इन्होने दो साधुओंको नेपाल देशमेंसे भद्रभाहु स्वामीको बुलानेको भेजा. उन्होंने संयोगोंका विचार कर १२ वर्ष वाद आनेका कहा. बाहर वर्षका अकाळ पूरा होजाने पर साधु इकठे होकर सूत्रोंको मिलाने लगे. ज्ञानका विच्छेद होता देखकर स्थूलभद्रादि ५ साधुओंको भद्रबाहु स्वामीके पास नेपाळ भेजे. चार साधु तो हिम्मत हार गये परन्तु स्थूलभद्रने दस पर्वका अभ्यास किया. ग्यारवें पर्वका अभ्यास करते समय उन्हें विद्या अजमानेकी इच्छा हुइ इससे जब भद्रबाहु स्वामी बाहर गये तब

स्थूलभद्रसिंहका रुपकर उपाश्रयमें बैठे। गुरु ने पीछे आकर यह सब देखा इससे उन्हें विचार आया कि अब ऐसा समय नहीं रहा कि विद्याको कायम रख सके या पचा सके. और आगे पढाना बन्द कर दिया ऐसा करने पर भी जब श्री संघका बडा ही आग्रह देखा तब बाकीके पर्वका मूल मात्र पाठ सिखाया, अर्थ नही बताया. स्थूलभद्रके समयके बाद चार वर्ष और प्रथम संहनन, प्रथम संस्थानका विच्छेद हो गया.

(८) स्थूलभद्र स्वामीः—पाटली पुत्रके गौत्तम गोत्री सगडालके बेटे, ३० वर्ष गृहवास, २४ वर्ष व्रतपर्याय, ४५ वर्ष युग प्रधान पदवी, ९९ वर्षकी उम्रमें (वीर संवत् २१५ वर्षमें विक्रम पूर्व २५५ में) स्वर्गवास.

(९) महागिरि स्वामीः—लापत्य गोत्र, ३० वर्ष गृहवास, ४० वर्ष व्रतपर्याय १०० वर्ष युग प्रधान पदवी १०० वर्षकी उम्रमें (वीर संवत् २४५ वि. पू. २२५ में) स्वर्गवास. इस समयमें आर्यमहागिरिके शिष्य बदीश इनके शिष्य उमा स्वामी और इनके

शिष्य शामाचार्यने पन्नवणा सूत्रकी रचना की और वीर संवत् ३७६ में स्वर्ग पाया.

(१०) सुहस्ती स्वामीः—वसिष्ठ गोत्र, ३० वर्ष गृहवास, २४ वर्ष व्रतपर्याय ४६ वर्ष युगप्रधान पदवी, १०० वर्षकी उम्रमें (वीर संवत् २९१ वि. पू. १७९ में स्वर्गवास. इन आचार्यके पास अवन्ती सुकुमालने ३२ स्त्रियोंको छोड दीक्षा ग्रहण की.

(११) सुप्रतिबद्धः—व्याघ्रापत्यगोत्र, ३१ वर्ष गृहवास, १७ वर्ष व्रतपर्याय, ४८ वर्ष युग प्रधान पदवी, ९६ वर्षकी उम्रमें (वीर संवत् ३१९ वि. पू. १२१ में) स्वर्गवास.

सुधर्मा स्वामीसे दस पाटतक तो अणगार तथा निर्ग्रंथ कहे जातेथे; परन्तु ग्यारवें पाटसे (सुप्रतिबुद्ध आचार्यने काकंदीक नगरीमें करोडों दफे सूरी मंत्रका जप करनेकी वजहसे) "कोटी काकंदी गच्छ" नाम पडा.

(इसी समयमें प्रथम कालकाचार्य हुए और श्याम वर्ण होनेसे श्यामाचार्य भी

नाम पडा.)

(१२) इन्द्रदीन स्वामीः—कौशिक गोत्री.

(१३) आर्यदीन स्वामीः—गौत्तम गोत्री.

(१४) वयर स्वामीः—गौत्तम गोत्री. वीर संवत् ४९६ में जन्म, ८८ वर्षकी उम्रमें वीर संवत् ५८४ में स्वर्गवास. बौद्ध राजाओंके समयमें इन्होंने दक्षिणमें जैनधर्मका प्रचार किया था.

वीरके बाद ६० वर्ष तक पालक राजाने अवन्तीमें राज्य किया. इसके बाद पाटलीपुरमें नवनन्दने १५५ वीर संवत तक राज्य किया. बाद चंद्रगुप्त–बिन्दुसार–अशोक–कुणाल–संप्रति इन पांच राजाओंने १०८ वर्ष राज्य किया. इनके बाद पुष्पमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष. नभवाहनने ४० वर्ष, गर्दभिलने १३ वर्ष और सकोकाने ४ वर्ष यों वीरके बाद २१ राजाओंने ४७० वर्ष तक राज्य किया और वीर संवत् ४७१

वें वर्षमें विक्रम संवत् चला. इस विक्रमनें परदुःखभंजन नाम बहुत ठीक पाया; इसीने जाति व्यवस्था, न्यायनीति, और वर्ण आदि की परपाटी चलाई.

इसका मन्त्री सिद्धसेन नामक कात्यायन गोत्री ब्राह्मण था. इसने बहुत विद्या पढ अनेक पंडितोंको शास्त्रार्थमें हरा भरोंचमें प्रवेश किया. यहां वृध्धाचार्यके साथ चर्चा करनेकी इसकी इच्छाथी परन्तु वृध्धाचार्य विहार कर गये थे इससे यह उनके पीछे हुआ और मार्गमें ही उन्हें जा मिला और ग्वालाके साम्हने ही चर्चा शरु कर दी. वृध्धाचार्यने ग्वाल समझ सके एसी भाषा बोल शास्त्रार्थमें विजय पाया. बाद उन्होंने राज सभामें चर्चा की यहां भी आचार्य जीते और सिध्धसेन इनका शिष्य हो गया. संस्कृत ज्ञानके अभिमानसे एक बार सिध्धसेनने नवकार मन्त्रका संस्कृतानुवाद करनेकी इच्छा की इससे गुरुने उन्हें गच्छसे बहार निकाल दिया. जब संघ बीचमें पडा तो आचार्यने आज्ञा की कि जब यह किसी महाराजका ध-

मेंमें लाकर धर्मकी प्रभावना करेगा तव इसे गच्छ में लुंगा. इससे बारह वर्ष तक इन्होंने धर्मकी प्रभावना की और बडे बडे ग्रंथ बनाये और राजाओंको जैनी बनाये अन्तमें यह गच्छमें लिये गये; ऐसा ग्रन्थोंमें लिखा है.

(१५) महावीरकी १५ वीं पाटके स्वामी श्री वज्रसेन स्वामी वीर संवत् ६२० में देवलोक हुए. इनके समयसे ४ गच्छ स्थापित हुए इन चारोंमेंसेही वर्तमान समयके ८४ गच्छ निकले हैं.

इसका वृत्तान्त यह है कि वज्रसेन स्वामीके समयमें ५ वर्षका एक और ७ वर्ष का एक यों बारह वर्षका अकाल पडा ! जिस समयमें दूसरे ५२ देशोंसे अन्नादि लानेका रेल स्टीमर जैसा साधन नही था ऐसे समयमें बारह २ वर्षका अकाल पड जाय तो कितना भयंकर समय हो सकता है जिसका विचार भी हृदयको त्रासदायक होता है ! उस समय लखपति लोग भी भूखों मरने लगे तो फिर बिचारे ' भिखुओं ' का कहांसे खानेको मिलता ?

ऐसे भयंकर समयमें—खराखरीके समयमें मर-दके सिवाय कौन ठहर सकताथा? सच्चे क्रियावान ७८४ साधु तो संथारा कर मनुष्य भव सार्थक किया, कितनेही भूखे मरते रहेने पर भी वहीं पडे रहे. और कितनोनेही "देखो भाई ! मरना तो पटापट लगा हुआ है, बच्चे तक मरे जाते है; ऐसे समयमें भगवानको नैवेद्य भेट चढाकर परलोक सुधार लेना चाहिए" ऐसी २ बातें बनाकर अपने पेट भरनेके मार्ग निकाल लिये.

इस समयमें जिनदत्त नामका एक धनाढ्य श्रावक मरने पड गया. इसको वज्रसेन स्वामीने शुभसूचक भविष्य कहा: कल जिहाजसे अन्नकी भरती आवेगी; आपघात न करना. इस उपकारके बदल इसने अपने ४ बेटोंको इन मुनिके शिष्य बना दिये. चंद्र, नागेन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर. इन चारों मुनियोंने खूब विद्याभ्यास किया परन्तु गुरुकी आज्ञामें न रहकर ४ नये गच्छ बना लिये.

यों पन्दरह पाट तकका समय व्यतीत हुआ. इसके बाद आर्यरोह स्वामी, पुशगिरी

स्वामी, फल्गुमित्रस्वामी, धरणीधरस्वामी, शिवभूतिस्वामी, आर्यभद्रस्वामी, आर्यनक्षत्र स्वामी, आर्यरक्षितस्वामी, नागस्वामी, जेहिल स्वामी, विष्णुस्वामी, सढिल अणगार, और सत्ताईसवें देवर्धि क्षमाश्रमण हुए.

वीरसंवत् ९८० और विक्रम संवत् ५१० में देवर्धि क्षमाश्रमणने महावीर प्ररूपित तत्त्वोंको वल्लभीपुर नगरमें पुस्तकारूढ किये अर्थात् सूत्र लिखे. *

वीर संवत् ९८० तककी कितनीही तारीखी बात लिखने जैसी है. वीर संवत् १६४

---

* सूत्र लिखनेके बारेमें प्रसिद्ध है कि देवर्द्धि क्षमाश्रमण एक बार सूंठका गांठिया वेर लायेथे परन्तु उसको वापरना भूल गये. कुछ कालके बाद उन्हें यह बात याद आई इससे उन्होंने विचार किया कि मनुष्योंकी स्मरण शक्ति कम होती जाती है और शास्त्र याद न रहेंगे इससे अच्छा हो कि पुस्तकें तैयार की जाय. इसी दूरदर्शितासे प्रेरित हो शास्त्र लिखे.

में चन्द्रगुप्त राजा हुआ, ४७० में विक्रम संवत् चला, ६०५ में शालीवाहन शक चला, ६०९ में दिगम्बर पंथ* चला. ६७० में सांचोरमें

---

*मारवाडवचली पट्टावलीमें लिखा है कि बुटक नामक साधुको आचार्यने एक कीमती वस्त्र दियाथा. बुटकने ममताकर उस वस्त्रको बांध रक्खा और पलेवण तक छोड दिया. गुरुने इस अयत्नाको दूर करनेके लिये उस वस्त्रको फाड 'मुहपति' बना साधुओंको बांटदी. बुटक इससे नाराज हो गया और जैन धर्मसे द्वेष करने लगा। उसने सब वस्त्र फैंक दिये और दिगम्बर हो घूमने लगा और नये २ शास्त्र बना लिये. "स्त्रियोंकी मोक्ष नही होती; वस्त्र पहने वह साधुही नही" इत्यादि बातें चलाई. इस तरह इस पट्टावलीको देखनेसे मालूम होता है. दिगंबरीमत वीर संवत् ६०९ में चला (हमारे नजदीक ऐसा मानना किसी तरह ठीक नही है. वस्त्रकी बातसे नाराज हुए साधुने नया पंथ नकाला यह बात हँसीमें उडाने योग्य है. सही बात तो यह है कि इ-तह ास लिखनेकी यहांकी परिपाटी न होनेसे ऐसी इर्ष्या–द्वेष पूरित दन्तकथायें चल गई हैं.)

जोर था कि ऐसा वैसा मनुष्य तो उनके विरुध्ध प्ररूपणा कर जिन्दा ही नही रह सकता था, ऐसे समयमें हजारों–लाखों चैत्यवासियोंको शुध्ध जैन धर्म समझाकर अपना गच्छ स्थापन करने वाले लोंकाशाह कौन थे, कब और कहां कहां घूमे फिरे ये इत्यादि बातें आज भी हम पक्की तरह नही कह सकते. जो कुछ बातें उनके बारेमें सुननेमें आती हैं उनमेंसे मेरे ध्यानमें मानने योग्य यह जान पडती है कि श्रीमान लोंकाशाह अहमदाबाद शहर के प्रसिध्ध साहूकार थे. इनका राजदरबारमें बडा मान था. इनके हस्ताक्षर बडे सुन्दर थे. इनकी स्मरणशक्ति बडी तीव्र थी. एक दफे यह उपाश्रयमें गये; वहां ज्ञानजी वगेरा यति पुस्तकों को ठीक जमा रहे थे और जीर्ण ग्रन्थोंकी दशा देखकर खेद पा रहे थे. एक यतिने लोंकाशाहसे योंही हँसी ही हँसीमें कहा "शाहजी! आपके अक्षर बहुत ही अच्छे हैं; परन्तु हमारे किस कामके? इस भंडारका उध्धार करनेमें यह कुछ काम आयगे?"

जिसका स्वभाव ही सदा कुछ न कुछ

उपकार करनेका था ऐसे लोंकाशाहने उत्तर दिया: " वडी खुशीसे, हो सकेगा इतने शास्त्रोंकी नकल करदेनेको मैं तैयार हुं."

इसी समयसे इन्होंने एकके वाद दूसरा सूत्र लिखनेमें ही दिन विताना शुरु किया. श्री दश वैकालिक सूत्रमें " धम्मो मंगल मुक्किठ्ठ अहिंसा संजमो तवो " ऐसा पाठ उनके वांचनेमें आनेमें और साधुओंका व्यवहार हिंसामय देखनेमें आनेसे उन्हे इच्छा हुई कि धर्मका सच्चा स्वरूप ढूंढना चाहिए. शास्त्रोंके लिखनेसे उनका ज्ञान वहुत वढ गया. यह वात सच है कि एक पुस्तक वांचनेकी अपेक्षा लिखनेसे दस गुणा ज्ञान वढता है; कारणकि वाक्य लिखनेमें जितना समय लगे उतनेमें वह मस्तकमें अच्छी तरह जंच जाता है.

उतारनेको लिये हुए शास्त्रों मेंसे एक एक प्रति यतिओंके लिये और एक एक अपने घरू उपयोगके लिये लिखी. इस तरह लोंकाशाहके पास एक असेंमें अच्छा जैन साहित्य इकट्ठा हो गया. मेरी कल्पना ऐसी है कि ज्यों ज्यों लोंकाशाह जैन शास्त्रोंकी

खूबियां समझते गये वैसेही वैसे दो दो प्रति उतारनेका काम खुद न कर किसी लेखकके पास कराते गये होंगे; कारणकि खुद श्रीमान् थे इससे दूसरी नकल करने जितना समय उन्होंने बचा कर और २ शास्त्रोंके देखनेमें बिताया होगा.

इस तरह लोंकाशाह पहले 'विद्यार्थी' और फिर 'संशोधक' हुए. वर्षोंतक शास्त्र लिखनेका और एकान्तमें विचारनेका काम करतेथे. वे इस कामको Labour of love की रीतिसे-अपने आन्तरीक प्रेमसे-करते थे. न कि किसी भांतिके बदलेके लिये. पुण्योदयके प्रभावसे वे धनवान थे; उन्हें खाने पीनेकी कोई चिन्ता नहीथी. धर्म संबन्धी ऐसे महाभारत काम ऐसोंसे ही हो सकते हैं.

इसी अर्सेमें अर्थात् १५२८ में अणहिल्लपुर पाटणसे लखमसी नामका साहुकार अहमदाबाद आया. लोंकाशाहके साथ धर्मचर्चा करनेका मौका मिला और धर्मका सत्य स्वरूप समझमें आया. अब लखमसीको स्मरण हुआ कि महावीर प्रभुके निर्वाण समयसे बैठा भस्मग्रह

उतरने वाला है इससे सत्यधर्म फैलानेको जो कुछ प्रयास किया जायगा सफल ही होगा. इस विचारसे दोनोंको हिम्मत आई और उन्होंने हर तरहकी जोखम माथे पर ले धर्मवीर (martyr) बनकर दुनियाको तारनेका निश्चय किया.

लखमसीने अपने गांव जाकर वहां भी खूब लिखना-लिखाना, पढना-पढाना, बांचना-बँचाना शुरू किया और बहुत जीवोंको ज्ञान दिया.

एक समय अरहटवाडा, पाटन, सुरत वगैरा के चार संघ अहमदाबादमें आ पहुंचा और बरसात बहुत ज्यादा होनेसे उन्हें नियमित समयसे ज्यादा ठहरना पडा. संघके गृहस्थ यतिओंके पास व्याख्यान सुननेको जाते थे वहां लोंकाशाहका नाम उनके सुननेमें आया. वे कुतूहलके लिये लोंकाशाहके घर गये. नागजी, दलीचंद, मोतीचंद और शंभुजी नामके चारों संघवी भी और २ श्रावकोंके साथ लोंकाशाहका उपदेश सुननेको गये. लोंकाशाहने शुध्ध मुनिमार्ग और दया-

किया है. उसमें यक्ष और भूतके मन्दिरोंका वर्णन किया है परन्तु कहींभी तीर्थंकरकी प्रतिमा या मन्दिरका जिक्र नही किया. जो सच मुच जिनदेवकी प्रतिमा या मूर्ति होती यक्ष मन्दिरोंकी तरह उसका भी वर्णन अवश्य किया जाता.

(३) बहुतसे श्रावकोंका वृत्तान्त सूत्रोंमें दिया है. उसमें परदेशी राजाओंके द्वारा दानशालाऐं बनानेका, श्रेणिक राजाके 'अमार' घोष करानेका, श्रीकृष्णका धर्मदलालीकर हजारों पुरुषोंको दीक्षा दिलवानेका—आदि अधिकार चला है. परन्तु सूत्रमें कहीं भी किसी श्रावकके मन्दिर बनवानेका या प्रतिमा स्थापित करनेका अधिकार नहीं चला.

संखपोखली, उदाईराजा, अरणीक, आणंदजी ऐसे बहुत अच्छे श्रावक श्राविकाओंका अधिकार चला है परन्तु इनके इतिहासमें कहीं भी जैन मूर्ति पूजनेका अधिकार नही आया. हां, उन्होंने सुपात्रोंको दान दिये हैं, अष्टमी चतुर्दशी के पोषध किये हैं, ग्यारह पडिमा (प्रतिमा)का आदर कि-

या है, कितनों हीने संथारे किये हैं: ऐसी २ बहुतसी बातोंका उल्लेख किया है. जो मूर्तिपूजा उस समय ये लोग करते होते तो उसका भी उल्लेख अवश्यही होता. (और इनके परिवार और घरका वर्णन भी उसमें है परन्तु नही लिखा की किसीके घरमें देवरा या प्रतिमा थी.)

(४) शास्त्रोंमें मुनियोंको पंचमहाव्रतधारक और पंच आचारके पालक कहा है. और पांच आश्रवका सेवन करने वालेको कुगुरू बताया है; इतनाही क्यों कुगुरूको गुरू असाधुको साधु मानना मिथ्यात्व कहा है (श्री ठाणांगजी सूत्र.)

(५) प्रश्न व्याकरण नामक जैन सूत्रमें प्रतिमाके स्थापन करनेवाले, पूजनेवाले देव तुल्य मानकर उसके लिये हिंसा करनेवाले नरक गतिके अधिकारी बताये है. श्री आचारांग सूत्रमें भी इस बात पर खूब जोर दिया है.

ऐसी सादी परन्तु साफ दलीलोंके सुननेसे संघवी और उनके साथियोंको ज्ञान हुआ. परन्तु जब यतिओंने सुना कि ये लोग लोंकाशाहके यहां बार बार जाते हैं तब वे

लौंकाशाहपर कोपायमान हो गये और संघवी से कहा कि "संघके मनुष्योंको खर्चकी तंगी होगी इस लिये संघको दूसरे गांवको रवाना होने दो" संघवीने उत्तर दिया कि "अभि पानी खूब गिरा है; इससे बहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति हुई है और कीचडभी हो गया है. ऐसे समयमें जाना योग्य नही है." यतिने कहा कि "ऐसा धर्म तुम्हें किसने सिखाया? धर्म के कामों जो हिंसा हो वह हिंसा ही नही है क्योंकि हिंसाकी अपेक्षा लाभ ज्यादा है."

संघवी इस वचनसे बडे दुःखी हुए. क्या यह जैन यतिके मुखका उत्तर है? दयाहीन महाव्रतरहित ऐसे असंयतीको संयती कहाही कैसे जा सकता है? ऐसा सोच संघवीने यतिकी खूब भिर्भत्सना की और इसी समयसे कितनेही तो खुल्लमखुल्ला लोंकाशाहकी ओर होगयें और कितनेही पूरे हिम्मत बहादुर न थे वे अपने २ घर गये, परन्तु अन्तःकरण उनका भी लोंकाशाहकी ओर झुक गयाथा. वेभी लोंकाशाहकी प्रशंसा करते और लोंकाशाहकी कही हुई दलीलें जिसकिसीको सुनाते थे.

इस तरह गुजरातकी राजधानी अहमदाबाद जो व्यापारका केन्द्र होनेसे कई आदमी व्यापार करनेको, कई शहर देखनेको, कई यात्रा करने-को वहां आतेथे और लोंकाशाहका उपदेश सुन उनकी ओर खिच जाते थे. परन्तु इस समयतक लोंकाशाहने अपने सम्पादित ज्ञानको चोतरफ फैलानेके लिये कोई खास योजना न की थी –अर्थातक उन्होंने कोई 'मिशन'–'गच्छ' या 'संघाडा' नही स्थापित कियाथा.

दीक्षाके कितनेही उम्मीदवारोंने श्रीमान् लोंकाशाहसे प्रार्थना की कि जो शाहजी दीक्षा लेकर मार्ग खोल दे तो बहुतसे भव्यजन इस मार्गपर चलनेको तैयार हैं. लोंकाशाहने ज-वाव दिया: "मैं इस समय बिलकुल बूढा और अपंग हूं. एसे शरीरसे साधुकी कठिन क्रियायें सधना अशक्य है. क्योंकि जिस स-मय भ्रष्टाचार चारों ओर फैल रहा हो ऐसे समयमें दृष्टान्त बैठानेके लिये जो दीक्षा ग्रहण कीजाय वह तो अति शुध्ध होनी चाहिए. सिवाय इसके मेरे जैसा मनुष्य दीक्षा लेकर जितना उपकार कर सकता है उससे ज्यादा

उपकार संसारमें रहकर कर सकता है. इन २ कारणोंसे मैं तुम्हें दीक्षा लेनेकी इजाजत देता हूं" यों कहकर लोंकशाहने ४५ पुरुषोंको दीक्षाकी विधि समझाई और दीक्षा दी (संवत् १५३१) इन ४५ साधुओंने अपने उपकारीका नाम अमर रखनेके लिये अपने गच्छका नाम "लोंकागच्छ" रक्खा.

इस तरह लोंकागच्छकी उत्पत्ति हुई. वह कोई नया धर्म नही था; नया तूत नहीं था. श्रीमान् लोंकाशाहने अपनेको मनाया या पुजाया नही. खुद शुध्ध धर्मका उपदेश किया और उस उपदेशके अनुसार दुसरोंने शुध्ध धर्मको फैलानेवाला 'गच्छ' (फिर इसे संघाडा कहो चाहे मिशन कहो) स्थापित किया. अंग्रेजी जाननेवाले मनुष्य अच्छी तरह जानते हैं कि 'मिशन' कितनी पवित्र चीज है. किसी परोपकारी आशयको चित्तमें रख उसकी सिध्धिके लिये गांव २ घूमनेका निश्चयकर घूमनेवालोंकी टोलीको मिशन कहते है. गच्छ या संघाडेका भी यही आशय है; परन्तु आजकल कुछकी कुछ दशा इनकी हो गई है. एक गच्छ

का उपदेश दूसरेसे प्रथक् न होना चाहिये. एक गच्छ एक ओर काम कर रहा है तो दूसरेको दूसरी ओर काम करना चाहिए; न कि एक दूसरेकी नींव खोदे—एक दूसरेसे विरूध्ध प्ररूपणा करे और मैं मैं तू तू में पडकर सर्वसामान्य पिता महावीरको लांछित करनेके कारणभूत हों. धर्ममें 'गच्छ' और संसार व्यवहारमें 'जाति' या 'वर्ण' नामकी संस्था जगह २ देढ अकलके लोगोंकी बत्तीसीपर चढ रही है! और इनको बेहद अन्यायकी द्दष्टिसे देखा जाता है. कितनेही स्वयंबुध्ध—केवलज्ञानी (!) इनके मूलमें कुठाराका प्रहार करनेमें ही अपनी बहादुरी समझते हैं. कितनेही अध्यात्माभिमानी (!) गच्छके भेदोंको गोटालेका रूप देकर संघके बंधनको जडसे उखाड फैंकनेको कमर कस बैठेहैं और शास्त्रके एक दो ऊपर ऊपरके मुद्दाओंसे अपनेको ज्ञानियोंमें गिनाते हैं. इस स्थितिको ठीक करनेके लिये अब एक नये लोंकाशाहकी आवश्यकता है.

श्रीमान् लोंकाशाहने जैन धर्मका शुध्ध

रूप जाना और दुसरोंको वताया. एक दिन ऐसा भी आया कि वह थोडेसे दायरेसे निकल तमाम देशमें फैले इस लिये नियमसर सदाके लिये 'मिशन' भी स्थापित हो गया.

परन्तु इस 'मिशन' के जन्मने बहुतोंमें ईर्ष्याग्नि उत्पन्न करदी. बहुतसे चैत्यवासी इस मिशनके स्थापित करनेवाले लोंकाशाह और उनके अनुयायियोंको गाली-गलोंज तथा निन्दा से सन्मानित करने लगे! इनका ऐसा करना कुछ अस्वाभाविक कर्म न था; क्योंकि देखते ही देखते मिशन हिंन्दुस्थानके हरहिस्सेमें फैल गया और ४०० वर्षके भीतर ही भीतर चैत्यवासियोंमेंसे ५०००० पांच लाखसे ज्यादा मनुष्योंको अपनेमें मिला लिया. ऐसी असाधारण जीत असाधारण ईर्ष्या उत्पन्न करे इसमें आश्चर्य ही क्या है? अहमदावादमें यह मिशन पहली पहल स्थापित हुआ वहां अभी-तक लोंकाशाहके अनुयायी और मूर्तिपूजक जैनोंमें झप्पाझपी चलती रही है इसका कारण ऊपर लिखी गई हकीकतसे साफ समजमें आता है.

श्रीमान् लोंकाशाहका गच्छ सख्तसे सख्त रुकावटोंको सहनशीलताके साथ दूर करता हुआ हिंदके प्रत्येक भागमें पहुंचगया, इसमें उस प्रचंड आत्मिक वलवाले महात्माका 'विचार वल' ही कारण था. उन्होंने सत्यका पक्ष किया और सत्य पर चलने वालीउन्की जिन्दगी Passive नहीथी वल्कि Active थी. वे दृढ संकल्प करते कि अमुक जगह अंधकार फैल रहा है वहां प्रकाश होना चाहिए और कुछ संयोग ऐसा ही वनता कि [illegible] किसी तरह वहां लोंकाशाहका उपदेश पहुंचह।[illegible]ता. इससे जान पडता है कि लोंकाशाहने मुसाफरी भी की होगी, आम तोर पर व्याख्यान भी दिये होंगे; परन्तु इस तरहका कोई उल्लेख उनके निगुणे भक्तोंने कहीं नहीं किया. लोंकाशाह किस सालमें जन्मे; कव उनका देहान्त हुआ; उनका घर संसार कैसा चलताथा; वे थे कैसी सूरतके; उनके पास कौन-२ से शास्त्र थे; वगेरा २ हम कुछ नही जानते. इस महापुरुषके वंशजोंका इतिहास ज्यों ज्यों हम इस पुस्तकमें पढते जायगे

जैसे २ मालूम होगा कि कितनों ही को बडे धनवाले और कितनों ही को (पट्टावलीके आधारसे) खूब विद्यावाले लिखा है; परन्तु अफसोसकी बात है इनमेंसे एक भी ऐसा नही निकला कि इतिहासका प्रेमी होकर पैसे लगाकर या संशोधक बुद्धिके सहारे लोंकाशाहका इतिहास इकठ्ठा कर लेता. स्वयं अहमदाबादमें इस महापुरुषका घर होने पर भी-धर्मका मूल शिरस्त होने पर भी अभीतक यह मेरे जानने में नही आया कि वह किस पोळ (Street) में था. और किसीको इसका विचार भी नही आया कि घरकी तलाश कर वहां अवश्य होने वाले ग्रन्थोंसे Central Jain Library तैयार करें. कैसी निगुणी कोम ! कैसा खेदजनक अंधेर ! एक साधुके पांच सात चेले हुए कि फौरन उनमेंका एक, जिसे उलटी सीधी तुकबंदी आती है 'अमुक पूज्यका रास' आदि लिखनेको बैठजाता है और उसमें पूज्यके संसार पक्षके काका मामा बेटे आदिकी नामावली देकर पढने वालोंको पीडा देता है. वैराग्य होनेका मामूलीसा कारण लिखकर उसका भारी रूप बना

देता है. जन्मतिथि और मरणतिथिकी घडी-पल लिखना भी कविराज नही चूकता; एक पांच शिष्यके गुरुके लिये इतनी अयोग्य संभाल रक्खी जावे और पांचलाख मनुष्योंके उपकारी जीव और वर्तमान समयके सब साधुओंके पूज्य पुरुषका इतिहास तैयार करनेको एक भी पूज्यने—एक भी साधु कविने—एक भी 'श्री पूज्य' ने-एक भी यतिने-यहांतक कि एक भी श्रावकने जरा भी प्रयास नहीं किया. इस महापुरुषको हम जैसे निगुणे लोगोंमेंसे चलनेको ४०० वर्ष ही हुए हैं इसलिये इतिहासके मुद्दे मिलना असंभव नही है. यह काम सबसे पहले 'श्रीपूज्यों' का है; क्यों कि वे अपने को लोंकाशाहके वारिस मनवाते हैं. खेदजनक तो यह बात है कि ऐसा होनेपर भी इनमेंसे कोई भी जरा भी प्रकाशकर इस अंधकारको दूर करनेकी तकलीफ उठाते नहीं.

श्रीमान लोंकाशाहके उपदेशानुकूल कुछ वर्ष तक तो शुध्ध चारित्र पालनेवाले साधुजी हुए परन्तु पीछेसे इसमें भी गोटाला हो गया. परिग्रह और आरंभ त्यागीओंमें दाखिल हुआ

और वह यहांतक बढा कि 'साधु' और 'यति' ऐसे दो भेद होनेका समय आ गया. याने शुध्ध चारित्रका उपदेश करनेवाला जो लोंकाशाहके नामसे गच्छ चलरहा था उसमें शिथिलाचारी यति मौजूद रह गये (और यतिओंका वंश वढने लग गया.) संवत् १६६५ में धर्मसिंह और संवत् १६९२ में लवजी नामके दो समर्थ पुरुष हो गये हैं; इन्होंने साधुता स्वीकार साधुमार्गके अनुयायी वनाये. इसी समयसे 'चतुर्विध' संघकी जगह 'पंचविध' संघ हुआ-अर्थात् साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका ऐसे संघके चार अंगोंमें 'यति' या 'अर्ध साधु' का एक अंग और शामिल हुआ. ये यति पैसा सवारी छत्र चंवर सब कुछ रखते थे, सरदारी भोगते थे और उपदेश भी-देते थे.

परिग्रहधारी मनुष्य उपदेश करे इसके विरुध्ध मुझे कुछ नही कहना है; क्योंकि जैसे निर्ग्रंथ उपदेशके करनेवाले पंचमहाव्रतधारी मुनिओंकी आवश्यकता है वैसेही आचार विचारसे विल्कुल भ्रष्ट हुए मनुष्योंके लियेभी

। और व्यवहारका उपदेश करने वाले
ास वर्गकी जुरूरत है. संसारी-श्रावक इस
ामको करनेके लिये तैयार न थे ऐसे सम-
यमें जो. यतिओंने इस कामको पूरा किया
यह प्रसन्न होने जैसी बात है. और इस का-
मको करने के लिये गुजरान होने जितना
द्रव्य भी चाहिये ही. परन्तु द्रव्यकी इतनीही
हदपर न रह परिग्रहका लोभ खूब बढ गया.
इन्द्रिय सुख और सरदारीका राज्य हो चला
और श्री लोंकाशाहकी आज्ञाके उद्देशको
तक भूल गया. आत्मिक उपदेश करने वाले
के बालोंमें पट्टियां पडी हुई और सुगन्ध छाई
हुई देखकर तथा उसे थोडी दुर चलनेमेंभी
मनुष्योंके कंधेपर पालकीमें चढा हुआ देख-
कर श्रोताओंके हृदयपर क्या प्रभाव होगा
यह समझना सहज है. एक स्कूल मास्टर,
एक पत्र सम्पादक, एक वक्ता, एक प्रोफेसर
कैसाही कैसाही ठाठसे क्यों न रहे उसका
उपदेश सुननेवालेको उसकी ओर तिरस्कार
नहीं होगा, परन्तु शरीरको क्षणभंगुर कहने
वाले, द्रव्यकी अन्यायसे उत्पादकता सिख

करनेवाले, आत्माका आनन्दमय स्वरूप बताने वाले (और इसपर भी संसार छोडकर निकले हुए) मनुष्यको नाटकके पात्र कासा काम करता हुआ देख श्रोता वर्गको अच्छा विचार होगा या क्या ? यह वे स्वयं अपने चित्तसे विचार कर देखें. वहांपर मैं यह साफ तोरपर कहताहूं कि मैं यतिओंका निन्दक नहीं हूं; प्रत्युत मैं इनका अस्तित्व रहना ठीक समझता हूं और वर्तमानकालके संयोगोंमें तो इनका रहना और भी जुरूरी है. परन्तु मैं जो कुछ कहना चाहता हूं वह केवल इतना ही है किः

(१) श्रीमान् लोंकाशाहका उद्देश परिग्रहधारी साधु बनानेका नहीं था इस बातको लक्ष में रखकर फिल हाल परिग्रह छोडदेनेका न बने तो इसको कम करते २ लोभ छोड देनेका सद्गुण धारण करना चाहिए. और 'श्री पूज्य' तथा यतिओंके पास द्रव्य हो उसे अपना न समझकर—और यह जानकर कि इसके हम ट्रस्टी मात्र हैं—उससे यति वर्गको उच्च श्रेणीका ज्ञान प्राप्त करानेके बडी २ पाठशालायें खोल देनी चाहिए, जगह २ लोंकाशाह

पुस्तकालय स्थापित कराने चाहिए, और जगह २ घूमकर उपदेश करनेमें खर्च करना चाहिए. प्राचीन जैन साहित्यका उध्धार करना चाहीए. ऐसे २ कामों में जो द्रव्य लगा तो जैन ज्यादा २ उनकी भेट करेंगे और उनपर फिदा २ होंगे.

(२) श्रीमान् लोंकाशाह के उपदेशानुकूल (और भगवान महावीर स्वामीकी आज्ञानुसार) जो इससमय साधु व्रत पालन कर रहे है ऐसे श्वेताम्बर स्थानकवासी साधुओंसे यतिओंको अकड कर न चलना चाहिए बल्कि, अपनेसे उन्हें उच्च स्थिति के मान विनय पूर्वक अपना गच्छ चलाना चाहिए. सिर्फ लोंकाशाहका नाम रखनेसेही हम लोंकागच्छी हो सकते हैं ऐसा जो कोई यति मानता हो तो यह उसका कहना भूल भरा है. पंचमहाव्रत नहीं पालने वाले से पालने वाला हजार दफे अच्छा है, फिर वह चाहे लोंकाका अनुयायी हो, लवजीका अनुयायी हो, 'विजय'के अनुयायी हो या कोइ और ही हो. ऐसी दृष्टि रखकर यतिओंको साधुओंसे निकटका सम्ब-

न्ध बांधना चाहिए और अपने श्रावकोंको उ-
पदेश करना चाहिये कि, जैन साधुओंसे श्राव-
कोंसे टेढे होकर न चलें. 'श्रीपूज्यों'को मानने
वाले श्रावक ही और, और साधुओंके मानने
वाले श्रावक ही और इसभांति दो पक्षोंका र-
हनाही खेदकारक है. श्रीपूज्य और साधु
इन दो वर्गोंका–आचारकी भीन्नतासे–होना
कुछ बुरा नही हैं परन्तु एक मनुष्य श्रीपूज्य-
को ही माने, साधुको नहि; और एक साधुको
ही माने, श्री पूज्यको नहिः इस तरहकी खींचा-
चाताण बुरे भविष्यकी सूचना देती है. मैं
पहले बतला गया हूं कि श्री पूज्यके यति-
ओंका कर्तव्य कुछ और ही है और पंचमहा-
व्रतधारी साधुओंका कर्तव्य है कुछ और.
और हमारे संघको दोनोंके अस्तित्वकी जुरु-
रत है. फिर एकको मानना और एकको नही
यह क्या ?

यतिओंको ही मान कर साधुओंसे बिल्कुल
दूर रहे ऐसे मनुष्यका कभी कल्याण होई
नही सकता, इसकी तो मैं 'गेरन्टी' देता हूं.
क्योंकि शुध्ध दशा प्राप्त हुए बिना मोक्ष

हो ही नही सकता. जो ऐसा साधु व्रत धारण करना न बन सके तो भावना तो जुरूर करनी चाहिए, जिससे किसी न किसी समय तो वह प्राप्त होवे. परन्तु जो परिग्रहधारी यतिओंमें ही सब कुछ है ऐसा मान साधु वर्गकी निन्दा ही करते रहेंगे उनकी तो मुक्ति कभी नहीं होगी, नहीं होगी !! नहीही होगी !!!

इसी तरह जो साधु वर्गकी जुरूरत मंजूर कर ही बैठे रहेगा और गृहस्थके आचार विचारके उपदेशक, जागृति उत्पन्न करनेवाले यतिओंकी आवश्यकता स्वीकार न करेगा वह अपने संघकी सांसारिक अधोगति बहुत जल्दी देखेगा. मैं मानता हूं कि वर्तमान समयके यति अपने इस कर्तव्यको पालनेके लिये तैयार नही है. इसमें सब दोष उन्हींका नही है, सम्हलने वाले पक्षका भी है—और ज्यादा है. क्यों वे उन्हें अपनेसे अलहदा रखते हैं; और क्यों कहीं कहींपर इर्ष्याविक करते हैं ? क्यों नहीं आजीजी कर— गुप्त रीतिसे समझा बुझा कर—न होसके तो अग्रेसरोंद्वारा उपालंभ देकर या —और आखीरमें अखबारोंद्वारा खुल्ले तौर सम्

पुकार मचाकर देशकाल उनके पास जैसा कर्तव्य कराना चाहता है वैसा कर्तव्य करानेकी फर्ज पडाइ जाती ?

अस्तु, अब हम अपने ऐतिहासिक मुद्देको पीछा हाथमें लेते हैं. मैं पहले लिख गया हुं कि लोंकाशाहके बाद कुछ समय तक तो शुध्ध साधु हुए और बाद साधु और यति ऐसे दो भेद पड गये. पहले तो मैं लोंकाशाहकी पाट पर बैठे हुए श्री भाणजी ऋषिसें वर्तमान समयके 'श्री पूज्य' साहिब श्रीमान् नृपचन्द्रजी (जामनगर) श्रीमान् खूबचंद्रजी (बडोदरा) और श्रीमान् विजयराजश्री (जेतारण–अजमेर) तककी वंशावली संक्षेपमें बतलाउंगा और उसके बाद लोंकाशाहके उपदेशका पुनरुध्धार करनेवाले श्रीमान् धर्मसिंहजी तथा लवजी ऋषिसे लेकर आजतकका इतिहास (मुझे मिले हुए साधनोंके आधारपर) जणाउंगा.

मैं इस बातको मंजूर करता हूं कि मुझे मिली हुई हकीकतोंपर मुझे पुरा भरोसा नही है क्यों कि हमारे यहां इतिहास लिखनेकी प्रथा नहोनेसे जुदी २ याददास्तों जुदा २ हाल

लिखा है. हां, मैंने इतना अवश्य ध्यान रक्खा है उनमें जो मुझे ज्यादा सही मालूम हुआ उसीको मैंने लिखा है. बहुत संभव है कि फिर भी मेरे लेखमें ऐतिहासिक भूलें हों; परन्तु वे जान बूझ करकी हुई न होनेसे क्षमा करने योग्य है.

(१) ऋषि श्री भाणजी, सिरोही जिल्ले के रहने वाले, पोरवाड जाति, संवत् १५३१ धन दौलत छोड ४५ पुरुषोंके साथ अहमदाबादमें दीक्षा ली.

(२) श्री भीदाजी, सिरोहीके रहने वाले, ओसवाल, साथरिया गोत्री, बहुत द्रव्य छोड कर कुटुम्ब परिवार सहित ४५ मनुष्योंके साथ १५४० में दीक्षा ली.

(३) श्री नूनाजी, ओसवाल, खूब माया-मत्ता छोडकर भीदाजी के सामने १५४६ में दीक्षा ली.

(४) श्री भीमाजी, मारवाड के पाली गांवके रहने वाले, ओसवाल, लोढा गोती, लाख रुपया छोडकर दीक्षा ली.

(५) जगमालजी, उत्तरमें नानपुर गांव के रहने वाले ओसवाल, श्री झांझेर गांवमें सुराणा गोत्री, ऋषि भीमजी के पास १५५० में दीक्षा ली.

(६) श्री सरवाजी, वीसा श्रीमाळी, अकवरके वजीर (!) थे, श्री जगमालजीके उपदेशसे इन्हे वैराग्य उत्पन्न हुआ. कहाजाता है कि पांच करोड की सम्पत्ति छोड कर दीक्षा लेने लगे उस समय अकवरने कहाः—

सरवा! ये संसार एक अजव चीज है;
दुनीयां के वीच रहना अजव चीज है!

परन्तु वादशाहको ऐसेही जवाव देकर संवत १५५४ में उन्होंने दीक्षा ली.

(७) श्री रूप ऋषिजी, अणहिलपुर पाटन के रहने वाले, वेद गोत्री, जन्म संवत १५५४, दो लाख रुपये छोडकर १५६६ अपने आप विनाकिसी गुरुके दीक्षा ली और १५६८ में पाटन में २०० घर श्रावकों के वना लोंका गच्छमें शामिल हुए. १९ वर्षतक दीक्षा पाल १५८५ में ५२ दिनका संथारा कर स्वर्गवासी हुए.

(८) श्री जीवाजी ऋषि, सूरतके रहनेवाले, पिताका नाम तेजपाल शाह, माताका नाम कपूरा बाई; जन्म संवत् १५५१ महावुद १२. संवत् १५७८ में ३२ लाख महमुदी जितना द्रव्य छोडकर दीक्षा ली. १ लाख रुपया दीक्षामें खर्च किया गया. १५८५ में पूज्यपदवी पाइ. सूरतमें ९०० घर उपदेश कर श्रावक बनाये. ३५ वर्ष तक संयमका पालन कर १६१३ के जेठ वुद १० को संथारा कर स्वर्गवासी हुए.

इनके समयमें सिरोही राज्यकी कचहरी में शैव और जैनोंमें विवाद हो गया इसमें जैन यति हारे और उन्हें राज्य छोडकर जाना पडा परन्तु इतनेमेंही अहमदाबादके मुकामपर विराजते हुए इनने अपने शिष्य कुंवरजी को वहां भेजा और उन्होंने वाद कर जैन मतकी जीत की.

इसी समयसे फूटफाट चली. मेघजी नामके एक स्थीवरको किसी कारणसे ५०० ठाणा सहित गच्छबाहर कर दिया. इससे वे हीरविजय सूरिके पास गये और उनके गच्छमें मिल गये.

इस समय लोंकागच्छमें ११०० ठाणा घूमतेथे परन्तु संप टूटनेसे तथा और २ कारणोंसे तीन गच्छ हो गये (१) गुजराती लोंकागच्छ (२) नागोरी लोंकागच्छ (३) उत्तरार्ध लोंकागच्छ. गुजराती लोंकागच्छके महानुभाव श्री जीवाजी ऋषिके तीन मुख्य शिष्य थे (१) श्री कुंवरजी (२) वरसिंहजी (३) श्रीमलजी.

(९) श्री कुंवरजी, पिता लहुवाजी, माता रूडीबाई; संवत् १६०२ के जेठ सुद ५ के दिन ७ मनुष्योंके साथ जीवाजी ऋषिके पास अहमदाबादमें दीक्षा ली. ये शास्त्रमें ऐसे कुशल थे कि-सिरोहीमें शैवोंको शास्त्रार्थमें हराकर जैन धर्मकी ध्वजा फहराईथी. १६१२ में इन्हें गुरुने पाटपर बिठाये. (इसी समयमें ही श्री कुंवरजीके छोटे गुरुभाई वरसिंहजी अलग हो गये! भावसारोंने इन्हें पूज्य पदवी दी. इनके पक्षको 'गुजराती लोंका गच्छका छोटा पक्ष' ऐसा नाम मिला.)

(१०) श्री श्रीमल्लजी, अहमदाबाद निवासी, पोरवाड, पिताका नाम थावर सेठ, माता कुंवरबाई. १६०६ के मागशिर सुद ५ के

दिन ऋध्धिको छोड श्री जीवाजी ऋषीके पास दीक्षा ली. १६२९ के जेठ सुद ५ के दिन श्री कुंवरजीके पाटपर बैठे.

ये बडे उग्र विहारी थे. गांव में एक रात और शहरमें पांच रातसे ज्यादा न ठहरते थे. एक समय कडी (कलोलके पास एक) गांव है वहां गये और बहुतसे जीवोंको उपदेश दिया. वे इनके उपदेशसे जैन हो गये और गलेकी कंठीयां खोल कुएमें डाल दी. इससे अभीतक वहां एककुआ कंठिया कुआ कहाता है. मच्छुकांठाकी तरफ विहार कर वे मोरवी गये. वहां श्रीपाल सेठको आदि ले ४००० घरको उपदेश कर श्रावक बनाये.

(११) श्री रत्नसिंहजी, हालार प्रान्तके नयेनगरके रईस, वीसाश्रीमाली सोलाणी, सुराशाह पिता. वेशवाल की हुई अपनी पत्नीके घर जा उसे उपदेश दे आपने दीक्षा ली, संवत् १६४८ में. वह कुमारी जो ११ वर्षकी थी उसका नाम शीवबाई था. शास्त्रोंका अच्छा अभ्यास करनेकी वजहसे १६५४ में गुरु

श्रीमल्लजीने इन्हें पाटपर बिठाया. इनके शिष्य शिवजी आदि हुए.

१२ श्री केशवजी, मारवाडके धुनाडा गांवके रहने वाले, ओसवाल, विजयराज पिता, जेतबाई माता, पूज्य श्री रत्नसिंहजी के पास ७ मनुष्योंके साथ दीक्षा ली. १६८६ में पाटपर बैठे. फिर थोडेही महीनोंमें संथारा कर जेठ शुद १३ के दिन काल किया.

(१३) श्री शिवजी, हालारके नवा नगरके रईस, संघवी अमरशी पिता, तेजबाई माता.

इनकी दीक्षाका प्रसंग कुछ विचित्र था. ऐसा कहा जाता है कि श्री रत्नसिंहजी नये नगरमें (जामनगर) पधारे उस समय तेजबाई वन्दना करनेको आई. उस समय उस भद्र बाईको पुत्र रहित जानकर उन्होंने सहज में कह दिया कि: "देवाणुपिये! धर्म श्रध्धासे सन्तति भी हो, धर्ममें दृढ श्रध्धा रक्खो." इस बातके एक अर्से बाद श्री रत्नसिंहजी फिर उसी नगरमें आये और तेजबाई वन्दना करने आई. इस समय इसके ५ पुत्र हो चुके

थे. बाईके हृदयमें ऐसी श्रध्धा हुई कि यह म-
हाराजके आशीर्वादका ही प्रभाव है.

एक शिवजी नामका उसका पुत्र महा-
राजकी गोदमें जा बैठाहुआ देखकर तेजवा-
ईने कहा कि महाराज ! यह आपका ही प्रताप
है, यह आपके पास रहना चाहता है. इसे
भले ही आप शिष्य करो. उसका बहुत कुछ
आग्रह देखकर महाराजने उसे पढाना शुरू
किया और उसके शास्त्रमें पारंगामी होनेपर
संवत् १६७० में दीक्षा दी. इनका जन्म १६३९
में हुआ और ये १६८८ में पाटपर बैठे.

इन्होंने पाटनमें चौमासा किया. कितने
ही चैत्यवासियोंसे उनकी कीर्ति सहन
हुई. उन्होंने उनके विरुध्ध दिल्लीके बादशा-
हके कान भरे. बादशाहने इन्हें दिल्ली बुलवा
या. यद्यपि चातुर्मासका समय था परन्तु
शास्त्रोंमें लिखा है कि दुष्टके जोगसे, दुष्का-
लके पडनेसे, हिंसाके कारणसे, राज्यके
भयसे ऐसे ही कठिन संकटमय कारणोंसे
चौमासेमें भी विहार हो सकता है इसी विचा
रसे शीवजी दिल्ली पहुंचे. कितने ही तात्का-

लिक प्रश्नोत्तर होने बाद बादशाह बहुत खुश हुआ और उनको महोरछापका पट्टा दिया और पालकी दी (संवत् १६८८ के आसोज सुद १० विजयदसमीके दिन)

इस तरह श्री शिवजी महाराजने लोंका गच्छकी कीर्ति बढाई यह सही है परन्तु यह पट्टा और पालकी उपाधिरूप हो पडे ! यह सोनेकी कटारी सिर्फ बांधनेकी ही न रही, तकलीफ पहुंचानेवाली हो गई. आजसे यति लोग चँवर छत्र पालकी वगैरा रख साहिबी करने लगे जिससे त्यागमें बडा भारी नुकसान पहुंचा.

श्री शिवजी अब अमदावाद आये. इस समय अमदावादके झवेरीवाडेमें नवलख नामक उपासरेमें आनेवाले श्रावकोंके ७००० घर थे और उपासरे १९ थे.

लालाजी ऋषिके पास काव्य न्याय सिध्धान्त आदि पढकर शिवजी पाटधर हुए इसके बाद इनके १६ शिष्य हुए. इनमेंसे जगजीवनजी आनंदजी आदि तो उच्च कुलमेंसे त्यागी हुए थे.

(श्री शिवजीके समयमें सं. १६८५ में धर्म सिंहजी लोंकागच्छसे जुदे हुए और उन्होने नया गच्छ चलाया.)

(१४) श्री संघराजजी का जन्म १७०५ के असाढ सुद १३ के दिन सिध्धपुरमें हुआ. जाति पोरवाड, पिता और वहनके साथ १७१८ में शिवजी ऋषि के पास दीक्षा ली.

श्री जगजीवनके पास व्याकरण, काव्य, अलंकार न्याय आदिका अभ्यास कियाथा. एक पटावली में मैंने पढाहै कि इन्होंने वहुतसे ग्रंथ टीका सहीत और अंग उपांग मूल छेद वगैरा सिध्धान्तोंका अभ्यास कियाथा. १७२५ में इन्हें आचार्य पद दिया गया परन्तु इससे खंभात में विराजमान आनन्दजी ऋषिने आक्षेप किया कि हमारे पूछे विना इन्हें आचार्य पदवी क्यों दी गई? उन्हें जवाव मिला कि "इस मामलेमें तुम्हारा कोइ अधिकार नही है." इससे आनन्दजी चिडगये और उन्होंने खंभातमें अपने शिष्य त्रिलोक ऋषिजीको पाटपर विठाकर अपना दुसरा गच्छ स्थापित किया. इसमें १८ संघाडे के यति मिले इससे 'अठारिया' कहलाने लगे.

श्री संघराजजीने २९ वर्ष आचार्य पदवी भोगी; १७५५ के फागन सुद ११ के दिन ११ दिनका संथारा कर ५० वर्षकी उम्रमें आगरा शहरमें स्वर्गवासी हुए. इस समयकी वडी धाम-धूमसे जलेहुए ईर्ष्या वाले लोगोंने बादशाहसे कहा कि " संघराजजीके माथे में मणि है !" बादशाहने स्मशानमें मनुष्य भेजे. किं वदन्ती है कि महाराजके शवका अग्निदाह होते २ म-स्तक फूटकर मणि यमुनामें गिरती हुई स-बने देखी. इसीसे ' संघराजजी मणीधर ' कहे जाने लगे. इस दन्तकथा में कितनी बात सही है यह मैं नही कहसकता.

(१५) श्री सुखमलजी, मारवाडमें जेस-लमेरके पास आसणी कोटके रहने वाले, वी-साओसवाल, सवरालेचा गोत्र, पिता देवीदास, माता रंभा बाइ, जन्म संवत् १७२७. श्री सं-घराजजीके पास १७३९ में दीक्षा ली. १२ वर्ष तप किया. सूत्र सिध्धान्त के अच्छे जान-कार थे. १७५६ में अहमदाबादमें चतुर्विध संघने पाटपर विठाया. अखीरी चौमासा धोराजीमें किया. वहां संवत १७६३ के आसोज बुद ११

के दिन काल किया.

(१६) श्री भागचन्द्री, श्री सुखमलजीके भानेज, कच्छ-भुजके रईस, १७६० के मगसिर सुद १ के दिन अपनी बंधुपत्नी तेजबाई सहित दीक्षा ली. बाद भुजमें पूज्यपद्वी मिली; १८०५ में काल किया.

(१७) श्री बालचंदजी, मारवाडदेशमें फलोधीके रहीस वीसा ओसवाल, छाजर गोत्री, पिता उगराशा, माता सुजानबाई, दो भाइयों के साथ इन्होंने दीक्षा ली. १८०५में सांचोर में पूज्यपद्वी पाई. १८१९ में काल किया.

(१८) श्री माणिकचंद्र, मारवाडमें पालीके पासके दयापुर गांवके वीसाओसवाल, कटारीया गोत्री, पिता रामचंद्र, माता जीत्रीबाई मांडवीके मुकामपर श्री बालचंद्रजीके पास दिक्षा ली. नये नगरमें १८२९ में पूज्य पद्वी मिली. १८५४ के फागन सुद ५ मंगलवारको सवापहर दिन चढे काल किया.

(१९) श्री मूलचंद्रजी, मारवाडमें जालेर प्रान्तके मारशी गांवके वीसाओसवाल, सिंह-

लगोत्री, पिता दीपचंद, माता अजबाई, श्रीमाणिकचंदजीके पास १८४९ में दीक्षा ली. जेठ सुद १० के दिन संवत् १८५४ के फागन सुद २ के दिन वडे ठाठके साथ नयानगरमें पूज्यपदवी दी गई. इन्होंने जेसलमेरमें १८७६ में काल किया.

(२०) श्री जगतचंदजी महाराज.

(२१) श्री रत्नचंदजी महाराज.

(२२) श्री नृपचंदजी महाराज (वर्तमान है.)

(इस तरह श्री 'कुंवरजी पक्ष'की पट्टावली खतम हुई. अब हम "गुजराती लोंकागच्छकी छोटी पक्ष" की पट्टावली देते हैं.)

(९) श्री वरसिंजी, यह पूज्य श्री जीवाजीके शिष्य थे. संवत् १६१३ के जेठ सुद १० के दिन वडोदेके भावसारोंने पूज्यपदवी दी.

(१०) श्री छोटे वरसिंहजी, १६२७ में गद्दीपर बैठे. १६६२ में दील्हीमें १० दिनका संथारा कर स्वर्गवासी हुए.

(११) श्री यशवंतसिंहजी

(१२) श्री रूपसंगजी.

(१३) श्री दामोदरजी.

(१४) श्री कर्मसिंहजी.

(१५) श्री केशवजी (इनके नामसे गच्छ प्रसिध्ध है.)

(१६) श्री तेजसिंहजी.

(१७) श्री कहानजी.

(१८) श्री तुलसीदासजी.

(१९) श्री जगरूपजी.

(२०) श्री जगजीवनजी.

(२१) श्री मेघराजजी.

(२२) श्री सोमचंदजी.

(२३) श्री हर्षचंदजी.

(२४) श्री जयचंदजी.

(२५) श्री कल्याणचन्द्रजी (२६) श्री खूबचंदजी (विद्यमान हैं) गुजराती लोंकागच्छ मेंसे (१) कुंवरजी पक्षके श्री पूज्य श्री नृपचंदजीकी गद्दी जामनगरमें (२) केशवजी पक्षके श्री पूज्य श्री खूबचंदजीकी गद्दी वडोदेमें और (३) धनराजजी पक्षके श्री विजयराजजीकी गद्दी जेतारण (अजमेर) में है.

प्रकरण ४.

लोंका गच्छकी और शाखाअें.

चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर प्रभुके वचन-शुद्ध रूपमें फैलानेका काम महात्मा लोंका शाहने माथे ले लिया और उनके मिशन (गच्छ) में एक के बाद एक करके अनेक मिशनरी मिल गये, यह हम पहेले बतला गये हैं. परन्तु जैसे स्वयं महावीर के वंशधारियोंको हम कालक्रमसे परिग्रहधारी और शिथिलाचारी हुए देख गये हैं वैसेही इनके अर्थात् महावीरके पेगम्बरके-लोंकाशाहके वंशधर भी कालक्रमसे परिग्रहधारी और शिथिलाचारी हो गये. त्याग-ज्ञानाभ्यास-परोपकार ये सब भुला गया; मान, लोभ, चालबाजी, और विकारोंका प्रबल बढ गया. लोंकाशाहका नाम मात्र गच्छके साथ लगा रहा; परन्तु उनका उद्देश रफू चक्कर हुआ; यहां तक कि यह गच्छ ही कोई और है ऐसा हो गया. विचले

जमानेमें जो इतना था कि इस मिशनके मिशनरी परिग्रहधारी होने पर भी बडे २ अमलदारों और राजाओंसे मिलकर उन्हें खुश करते और जैन धर्मका चमत्कार बतलाते; परन्तु अब तो इतना भी गुण बाकी न रहा. जैसे जैसे काल बीतता गया वैसे वैसे इनकी शक्ति औरोंको छोड अपने भक्तोंपर ही अजमाई जाने लगी. उन्होंने भक्तोंपर खास तरहका टेक्ष (Tax) लगाया और उसकी उगाई जोरोजुल्मसे भी होने लगी.

पहले 'यति' शब्द 'साधु' शब्दका पर्याय वाची था. यति शब्द यत् और यम दोनों धातुसे बनता है जिनका अर्थ (१) कोशिश करना (२) वशमें रखना है अर्थात् जो मोक्षके लिये कोशिश करता है अथवा इन्द्रियोंको वशमें रखता है उसीको यति कहते हैं. और इसीसे यति, साधुका द्योतक दूसरा शब्द था. परन्तु जैसे २ यति शिथिलाचारी हो गये वैसे २ इसके अर्थमें भी भेद पड गया. अब यति शब्दका अर्थ पंच महाव्रतधारी साधु नहीं बल्कि परिग्रह धारी उपदेशक हो गया.

इससे साधु और यति शब्दका उपयोग भि-न्न २ अर्थमें ही होता है. लोंकाशाहके वंशज कहलाते हुए उपदेशकोंको यति कहा जाता है और यतिओंकी शिथिलता देख श्री महा-वीर प्रभु और लोंकाशाहकी शुद्ध आज्ञाके अनुकूल चलनेके लिये घरछोड निकलने वाले उपदेशक साधु कहे जाते हैं. इस तरह यति और साधुके भेद पडे ३२० वर्ष भी नही हुए. ये भेद कैसे हुआ इसका हाल हम आगे बतावेंगे.

प्रकृतिका नियम है कि हरेक पंथ–प्रत्येक समुदायमें जब बहुत अंधकार छा जाता है तब कोई न कोई 'सुधारक' प्रकट हो जाता है और वह एक जुदी ही संस्था कायम करता है. थोडे बहुत समय तक तो इसके अनुया-यी थोडे होनेसे काम ठीक चलता है परन्तु मनुष्य बढनेके साथ ही फिर अंधेर छाता है. फिर इसमें भी कोई न कोई 'सुधारक' निकल खडा होता है. इसी तरह आगे भी होता रह-ता है. इसमें हर्ष–शोक करनेकी कोई बात नही है. कोई समुदाय ऐसा नही है जो बि-

लकुल अच्छाही हो और न कोई समुदाय ऐसा ही है जो बिल्कुल खराब ही हो. सबमें सुधार होनेकी जगह है. सुधारका काम कभी बंद नही होता.

चैत्यवासियोंकी गडबड दूर करनेके लिये लोंकाशाह उत्पन्न हुआ ऐसे ही उनके वंशजोंमें छाये हुए अंधेरको दूर करने वाला कोई दूसरा लोंकाशाह होना ही चाहिए. और कुदरतने उसे उत्पन्न किया ही. शिवजीके समयमें (संवत् १६८५) धर्मसिंहजी तथा वज्रांगजीके समयमें (१६९२) लवजी नामके दो सुधारक जाहिर हुए. इन्होंने अपना काम शुद्ध परूपणा करना जोरशोरसे चलाया. परन्तु इन दोनो वीरोंका आत्मिक बल लोंकाशाह जितना न था इससे वे अपना प्रकाश भी इतना न फैला सके. तथापि उन्होंने अन्धकार दूर किया, यह भी कुछ कम होने जैसा नही है.

इन दोनों वीरोंमेंसे पहले धर्मसिंहजीके हालसे पाठक गणको अच्छी तरह वाकिफ कर फिर श्रीमान् लवजी के वृत्तान्त बतलायगे.

श्रीमान् धर्मसिंहजीके वृत्तान्त.

काठियावाडके हालार प्रान्तमें जामनगर शहर है जिसे लोग 'नगर' और 'नयानगर' भी कहते है. यहां दशाश्रीमाली वनिया जिनदास रहते थे. इनकी स्त्रीका नाम 'शिवा' था. इस शिवाकी कूखसे भाग्यशाली धर्मसिंहका जन्म हुआ. जिस समय धर्मसिंहकी अवस्था १५ वर्षकी थी उस समय वहांके लोंका गच्छी उपासरेमें लोंका गच्छाधिपति श्रीपूज्य श्री रत्नसिंहजीके शिष्य श्री देवजी महाराज पधारे. इनके व्याख्यान सुनने वालोंमें धर्मसिंह भी था. उपदेशका प्रभाव धर्मसिंहपर ऐसा पडा कि उसे बडे जोरसे वैराग्य उत्पन्न हुआ. माता पिताने कुछ समय तक तो परवानगी न दी परन्तु दीक्षा लेनेका अखीरकार आज्ञा दे दी, इतना ही नही बल्कि बेटेके साथ बापने भी दीक्षा ले ली. यति वर्गकी दीक्षा ले गुरुभक्ति और शास्त्राध्ययनमें लगे हुए इस तीव्र वैरागी धर्मसिंहको ३२ सूत्र व्याकरण तर्कशास्त्र आदिका बहुत शीघ्र अभ्यास हो गया. ज्ञानकी तलाशमें लगे हुए

विनयनम्र पुरुष पर सरस्वती वहुत प्रसन्न होती है. धर्मसिंहके वारेमें प्रसिद्ध है कि दोनों हाथोंसे ही नही दोनों पैरोंसे भी कलम पकड कर लिख सकते थे. अष्टावधान करते थे. ऐसी शक्ति वहुत कम मनुष्यों में होती है और ऐसे मनुष्य तो और भी कम होते हैं जो ऐसी शक्तिको पचा कर विनयी वने रहें.

ज्यों ज्यों सूत्रज्ञान वढा त्यों त्यों उन्हें विचार होने लगे कि सूत्रमें कहने के अनुकूल तो हमारा वर्तात्र नही हैं. इस वास्ते जो हमने टुकडे मांगखानेको ही भेख नही लिया हो तो शुद्ध मुनिव्रत पालन करना चाहिए. यह विचार उन्होंने गुरु श्री शिवजीके साम्हने जाहिर करते हुए वडी नम्रतासे कहाः—

" कृपालु देव! श्री भगवानने २१००० वर्ष तक मुनिमार्ग वरतेगा ऐसा श्री भगवती सूत्रके वीसवें शतकमें कहा है. तथापि पंचमकालका वहाना कर मुनिमार्गके आचारसे जो हम लोग शिथिल हो गये हैं सो किसी तरह मुनासिव नही है; क्यों कि मनुष्य भव अमूल्य चिन्तामणि है. इस लिये कायरता छोड शूर-

रता ग्रहण कीजिए. आप जैसे समर्थ
द्वान महापुरूष दूसरे पामर प्राणियोंकी तरह
मिहिम्मत होजाय तो फिर अन्य प्राणियोंका
या दोष? इसलिये आलस्यको छोड सिंहकी
ांति पराक्रम दिखलाओ. मुनिमार्गपर चलो
और औरोंको चलाओ. ऐसा करनेसे जिन
शासनकी शोभा और आत्माका कल्याण है.
सिंह कायर नही होता, सूर्यमें अन्धकार नही
रहता, दाताको सूमपन नही अच्छा लगता,
तेजीको चाबुककी जरूरत नही है; वैसे ही
आपको कायरता न होनी चाहिए. जैसे अ-
ग्निमें किसी समय शीतलता नही होती वैसे
ही ज्ञानी पुरुषके मनमें भी कभी राग नही
होता. आप मुनिमार्गका आचरण करनेको
तैयार हो और मैं भी आपके पीछे २ दीक्षा
पालन करनेको तैयार हूं. संसार छोडे वाद
परिग्रह ग्रहण करना किसी तरह योग्य
नही है."

धर्मसिंहके ऐसे वचन सुन गुरू सोचने
लगे कि धर्मसिंहका यह कहना एकएक अ-
क्षरसे सच है परन्तु मुझसे निकला नही जा-

सकता और जो ऐसा, पण्डित और विनयी यह शिष्य ही गच्छ छोड जायगा तो गच्छकी बडी हानि होगी, इस वास्ते उसे रखना जुरूरी है. यों सोचकर गुरुने शिष्य धर्मसिंहसे कहा: "अभी हाल मैं तुरत इस पूज्य पदवीका त्याग करनेको तैयार नही हूं; तुम्ह धैर्य रक्खो और ज्ञान ध्यानमें उन्नति करो फिर अपन दोनों गच्छकी ठीकठाक व्यवस्था कर सब उपाधि छोड पुनः संयम धारण करेंगे. अभी तो जल्दी करना छोड दो."

गुरुके वचन सुन धर्मसिंहने विचार किया कि जो गुरु संयम धारण करें तो और भी अच्छा, क्यों कि ये मेरे ज्ञानके उपकारी है. इस लिये इनको साथ लेकर मुझे निकलना चाहिए. ऐसा विचार धर्मसिंहने सब्र पकडा. गुरु शिष्यका अत्यन्त स्नेह संबन्ध होनेसे विनयशाली शिष्यने इस समय गुरुका कहना मान लिया.

परन्तु गुरुकी बुद्धि निर्मल हो तब तक धर्मसिंह बिलकुल चुपचाप बैठने वाले न थे. उन्होंने सोचा कि त्यागिओंको मिलती हुई

फुरसतका उपयोग ज्ञानवृद्धिके साधनोंमें हो-ना ठीक है. मुखका उपदेश थोडेही मनुष्य सुन सकते है और वह भी एक ही जगह; परन्तु लिखा हुआ उपदेश सर्वत्र और सदा काम आ सकता है. ऐसा सोचनेके बाद उन्होंने गणधरके गूंथे हुए सिद्धान्त ग्रन्थोंपर टब्बा (टिप्पण) करनेका काम शुरू किया, जिससे सूत्र समझनेका काम सहज हो जाय.

इन्होंने २७ सूत्रके टब्बा पूरे २ लिख दिये. ये ऐसी खूबीसे लिखे गये हैं कि इन्हीके आधारपर आज भी साधुजन शास्त्र सीखते हैं और व्याख्यान करते हैं. पंजाबमें भी (जहां गुजराती कोइ भी नही समझता) इन्ही टब्बोंसे साधु शास्त्र वांचते हैं. सारे भारतमें टब्बाका उपयोग होता है. पंजाबी, मारवाडी और महाराष्ट्रीय जैनोंपर भी गुजराती भाषाका ज्ञान हासिल करनेकी फर्ज डालने वाला जो कोई मनुष्य हुआ तो धर्मसिंहजी ही हुए.

दिनपरदिन बीतने लगे परन्तु धर्मसिंहके गुरु अपनी साहबीसे नही तृप्त हुये और शुद्ध चारित्र पालन करनेको तैयार नही हुए.

आखिर धर्मसिंहजीके धैर्यका भी अखीर आ गया. उन्होंने गुरुसे कहा: " आपकी अभिलाषाके अनुकूल मैंने अबतक सब्र की, अब अपन दोनोंको और जो ऐसा न हो तो अकेले मुझे शुद्ध धर्मको पालने और प्रतिपादन करनेको मैदानमें आना हि चाहिए, ऐसा मैंने निश्चय किया है. क्योंकि कहा है " धर्मस्य त्वरिता गतिः "

"देवोंके प्रिय !" गुरुने कहा " तुम्ह देख रहे हो मुझसे वैभव छोड़ा नहीं जासकता; परन्तु तुम्हें अपना कल्याण करनेसे रोकना तुम्हारे शुभेच्छकको योग्य नही है. मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम्ह कल्याण करो. तुम्हारे कल्याणके लिये मैं सच्चे अन्तःकरणसे आशीर्वाद देता हूं. परन्तु जब तुम्ह रणक्षेत्रमें उतरनेको तैयार हो गये हो ऐसे समयमें डरानेको नही बल्कि संकटोंसे बचनेको धैर्य-कवच तुम्ह धारण करो इसके लिये सलाह देनेकी जुरूरत समझता हूं कि यति और पासत्थोंसे भरपूर वातावरणमें रहकर उनसे बिलकुल पृथक् आचार पालन करना जितना

कठिन है उससे बहुत ज्यादा कठिन इनके द्वारा भडकाये हुए लोगों द्वारा होते हुए–निन्दा तिरस्कार अपमान ताडना रूप परिसःहका सहन करना है. इन सबको तुम्ह आःत्मिक बलसे सहन करना. और अपने परम पिता महावीर और लोंका शाहका नाम चारों और गजा देना.”

धर्मसिंहने विवेकपूर्वक माथा नमाया और आंखमें गुरु भक्तिके आंसू आ गये. “और कुछ हुक्म ? कृपानाथ !” गदगद कंठसे विनयनम्र शिष्यने कहा.

“हां, मेरे विवेकी शिष्य ! एक हुक्म है. जिस काममें तुम्ह पडना चाहते हो वह ऐसा तो कठिन और नया है कि जो इस काममें तुम्हें सफलता हो तब तो कुछ नही वरना ‘न घरके रहोगे, न घाटके’. और ऐसा हो तो मुझे भी तुम्हारे साथ बदनाम होना पडे. इस लिये पहले मुझे परीक्षा करना है. आजकी रात तुम्ह अहमदाबादके उत्तरकी ओर बागमें जो दरयाखान नामक यक्षका देवरा है वहां रहो और प्रातःकाल मुझसे अखीरी

आज्ञा लेनेको आना."

गुरुको वन्दन कर धर्मसिंह दरयाखान की ओर चले. वहां गये तब दो घडी दिन था. शास्त्रकी आज्ञाके अनुकूल धर्मसिंहने वहां रहने के लिये उस जगह के रक्षक से आज्ञा मागी. तब एक मुसलमानने उत्तर दिया: "अरे जती ! तुम्हें क्या दरयाखान पीरकी ताकातका कुछ हाल मालूम नही है ? हमारे चमत्कारी पीरकी इस जगह कोई मनुष्य रातमें नही रह सकता, क्या तुम्हें यह नही मालूम ? इस देवने सैंकडों मनुष्योंको पछाड कर परलोकमें पहुंचा दिये हैं. क्या जतीजी! इनकी संगति करनेकी तुम्हारी भी इच्छा है? "

" भाई ! तुम्ह कहते हो कदाचित् ऐसा ही होगा; परन्तु मुझे तो मेरे गुरुकी आज्ञा है इस लिये यहां रहना ही पडेगा. संकटसे तुम्हने मुझे चिता दिया इस लिये धन्यवाद, परन्तु डर किसे कहते हैं इसको मैं जानता ही नही हूं; क्योंकि 'भय' शब्द मेरे कोषमें ही नही है." धर्मसिंहने उत्तर दिया.

"मरने दो तो इस सेवडेको ! अपना आयुष्य कम होनेसे ही जो हमारा कहना नही मानता होगा तो कोन जाने ?" एक दुसरा मुसलमान उस मुसलमानके कानमें बोला और फिर उन्होंने धर्मसिंहको रात भी रहने को इजाजत दे दी.

जैसे २ संध्या समय व्यतीत होता गया वैसे २ दरयाखान पीरकी जगह निर्जन और भयंकर होती गई. आखिर कार सारे कंपाउंडमें धर्मसिंह अकेले रह गये. इस निर्भय पुरुषने रजोहरण से एक स्थान पर जमीन स्वच्छ कर आसन लगाया और सझाय ध्यानमें मग्न हुए.

एक प्रहर रात बीतते ही दरयाखान यक्ष वहां पर आया. धर्मसिंह उस समय सज्झाय में लगे हुए थे. कभी नही सुने ऐसे शब्दोंका उच्चारण सुन यक्षको आश्चर्य हुआ और आज तक इस जगह पर रहे हुए सैंकडो मनुष्योंसे यह पुरुष कुछ और तरहका ही जान पडा. मैं नही कह सकता कि शास्त्रके पवित्र शब्दों के उच्चारणसें वातावरणमें होते हुए

असरसे, या 'मेरी आत्मा सर्व शक्तिमान है' इस दृढ भावनाके बलसे, या यक्षको कुतूहल हुआ इससे, या कोई और कारणसे, कुछ भी हो यक्ष अपने क्रोधी स्वभावको भूल गया और भक्तिपूर्वक धर्मसिंहकी वयावच्च–सेवा सुश्रूषा करने लगा. इतनाही नही बल्कि उनके उपदेशसे उसने उस समयसे किसी मनुष्यको न सतानेका संकल्प कर लिया. और यक्ष चला गया. आधी रात तक तो धर्मसिंह सज्झाय–ध्यानमें लवलीन रहे. फिर थोडासा आराम ले–अल्प निद्रा निकाल पिछली रातसे वापस उसी पवित्र काममें लग गये.

प्रभात हुई. सूर्यकी सुनेरी किरणोंके प्रकाशसे वहांका अन्धकार और भयंकार दूर हो गया. एक एक कर मनुष्य आने लगे. जिन्होंने गत सायंकाल को यहां यतिको छोडा था, वे उसका शव देखनेकी आशासे कुछ जल्दी आये थे; परन्तु जब उन्होंने शवकी जगह ध्यानमें लीन होने वाले महात्माको सहीसलामत देखा तो उनके हृदय में उसकी ओर पूज्यभाव उत्पन्न हुआ. पर्यंक आसनपर

बैठे हुए यतिने उन्हें सब हाल कहा. इससे मुसलमान भी यतियोंको चमत्कारी समझ कर उनका विनय करने लगे.

चार घडी दिन चढे धर्मसिंह गुरुके पास (कालुपुरके उपाश्रयमें) आये और उन्होंने वन्दन पूर्वक सब हाल गुरुको कह सुनाये.

शिष्यका ऐसा शौर्यभरा आचरण देख गुरुके मनमें आया कि यह शिष्य बडा पराक्रमी और बुद्धिशाली है. परिसह सहनेमें दृढ है. यह अच्छी तरह संयम पालन करेगा. जैन धर्मको प्रकाशित करेगा. इससे जैन शासनका उद्योत होगा. यों सोच फिर संयम ग्रहण कर विचरनेकी गुरुने धर्मसिंहको आज्ञा दी और कहा: "तुम्हारा संयम निभेगा." गुरुकी इस आज्ञासे परम संतोष पा और कितने ही दिक्षा लेनेका विचार रखनेवाले यतिओंको साथ ले धर्मसिंहने अपने गुरुकी भक्ति की, खमत खामणा की और वहांसे चलकर दरियापर दरवाजेके बाहर ईशान कोनके उद्यानमें जाकर

संवत् १६८५ में* संयम धारण किया.

*इस लेखका यह भाग लिख रहा था उसी समय पोष्टमेनने कुछ कागजपत्र लाकर मुझे दिये; उनमेंका पहला पत्र देखा उसमें कच्छी मुनि श्री नागेन्द्रचन्द्रजीकी लिख भेजी हुई एक प्राचिन कविताकी नकल निकली. उसकी ६० कडियोंमेंसे कुछ कडियों नीचे प्रकट करता हूं:—

एह अवसर पोशालिया, गड जालोर मुझार;
ताडपत्र जीरण थयां, कुलगुरु करे विचार. ४०
लोंको महेतो तिहां वसे, अक्षर सुंदर तास;
आगम लखवा सोंपियां, लखे शुद्धमुविलास ४१
उत्पातकी बुद्धिनो धणी, चतुर महामतिवंत;
एकटेक जिनधर्मनी, गुणियल गिरवो संत. ४६

यह कडी सूचना देती है कि धर्मगुरुकी जगह 'कुलगुरु' हो पडे यतिओंने श्रीमान लोंकाशाहको शास्त्र लिखनेको दिये परन्तु जालोरमें (अहमदाबादमें नहीं). लोंकाशाहके गुण यों वर्णन किये हैं कि वह शुद्ध और सुन्दर लिखनेवाला था. उत्पातिया बुद्धि अच्छी रखता था. जिनधर्मका दृढ श्रद्धालु था. प्रौढ था.

वहांसे विहारकर अहमदावाद शहरके दरियापर दरवाजामें दरवानकी कोट-रीमें उसकी इजाजत लेकर उतरे. और उसके चबूतरेपर बैठकर धर्मकथा करने लगे. दर्वा-जेमें होकर आने जानेवाले मनुष्य उनका उपदेश सुनने लगे. उनमेंसे कितनोंहीने श्रावक धर्म अङ्गीकार किया. इस तरह धर्म-सिंह मुनि शेषकाल दर्वाजेमें रहे, इससे या

संसारी होनेपर भी उसके नामके साथ सन्त पद लगाया है सो उसकी लायकी की सूचना देता है. आगे चलकर इसी कवितामें लिखा है:-

लोंके जे आगम लख्या, धुर मेल्या गुजरात;
बीजा शहेर नागोरमां, वांचे जन विख्यात.

लोंकाशाहके अनुयायी शिवजी नामक यतिसे धर्मसिंह अलग हुए इस बारेमें ६० मी कडीमें कहा है:—

संवत सोल पचासिए, अमदावाद मुझार;
शिवजी गुरुको छोडके, धर्मसि हुआ गच्छवहार.

धर्मसिंह लोंकागच्छसे बाहर हुए—अलग हुए और यतिवर्गकी जगह शुद्ध साधुवर्ग स्थापित किया, इस बनावके साथ १६८५ का

दरीयाखान पीरवाले चमत्कारका स्मरण रखनेके लिये इनके समुदायका नाम "दरीयापरी समुदाय" हुआ. दर्वाजेपर बैठकर उपदेश करनेसे,—Field preacher होनेसे इनका उपदेश सुननेका मौका वहुत मनुष्योंको मिल-

---

साल लगाया गया है.

ऐसा होनेपर भी मैंने कई एकके मुखसे सखेद सुना है कि छकोटी समुदायके कितनेही मुनियोंने धर्मसिहकी वहुतही निन्दा की है. इस सुनी हुई वातको थोडी वहुत माननेका कोई कारण मेरे पास है तो छकोटीके एक श्रावककी छपाई हुई पट्टावली है कि जिसमें लवजी ऋषिके संवन्धमें तो खूव लंवा चौडा लिखा है और धर्मसिहजीके विषय सिर्फ १० लाइन अखीरमें लिखी हैं; और इनमें भी ईर्ष्या टपक रही है. जैसे श्वेताम्बरोंने दिगम्बर मतकी स्थापनाके विषयमें कल्पना की कि अमुक साधुकी चादर गुरुने छीन ली उसका वैर निकालनेको वह नग्न रहकर नया पंथ कायम कर गुजरा; वैसे ही धर्मसिहकी कीर्ति न सहन करनेवाले अपने ही मतके

तथा. धर्म संस्थापन करनेवालेके लिये अच्छा से अच्छामार्ग आमतोरपर उपदेश करना ही है. शहरकी इशानकोणमें साबरमती नदीके किनारेके बगीचेमें बादशाह ठहरे हुएथे. उनसे मिलनेको जाते हुए उनके कामदार दलपतरामजीने धर्मसिंहजीका आमतोरपर होता हुआ उपदेश सुन जैनधर्म अङ्गीकार करलिया और आग्रह कर धर्मसिंहजीको अपने एक विशेष मकानमें उतारा दिया. इसमें मुनिका उपदेश सुननेको बहुत मनुष्य इकठे हुआ करते थे.

साधुके लिये लिखते हैं कि "उन्हें श्री पूज्यपदवी मिलनेका हक था वह न मिली और उपाध्याय पदवी भी दूसरे शिष्यको मिल गई, इससे वह लोंकागच्छको भुलाकर संवत् १७०९ में फिर दिक्षा ग्रहणकर बैठे." दरियापुरी समुदायके लिये ऐसा हास्यजनक कारण ढूंढ निकाला ! २७ सूत्रोंपर टब्बा करनेवाले और कितनेही अमूल्य पुस्तकोंके लिखनेवाले विनयपूर्ण तथा दृढधर्मी धर्मसिंहपर नमानने योग्य ऐसा यह आरोप ! हमें मिले हुए साधनों परसे हम कह सकते हैं कि श्रीमान्

एक समय मुनि धर्मसिंह इसी मकानमें बैठे २ उत्तराध्ययन सूत्रका पाठ पढा रहे थे, और साथ ही साथ अर्थ भी समझा रहे थे. सो सुनकर एक ब्राह्मण भीतर आया और नमस्कार कर पूछने लगा कि " आप शिष्य-को जैसा मार्ग विनय का बता रहे हैं, ऐसा

धर्मसिंहजी १६८५ में साधु तरीके–धर्मसुधा-रक (Martyr) तरीके बाहर हुए हैं–प्रकट हुए हैं; तब लवजी (धर्मसिंहजीकी समुदायके निन्दकोंके कथनानुकूल ही) १६९२ में धर्मसुधारक तरीके प्रकट हुए हैं. दोनों सम-कालीन थे, परन्तु पहले काम करनेवाले धर्मसिंहजी थे इतना ही नही बल्कि धर्मसिं-हजीका उपकार सम्पूर्ण जैनवर्गपर सदाके लिये हैं; क्यों कि उन्हीनें टब्बा किये है. मैं दोनों धर्मवीरोंका मान करता हूं. दोनोंकी मानसिक पूजा करनेमें मान समझता हूं; परन्तु इनमेंसे एकके हालके अनुयायी अपनी बडाई के लिये दूसरेकी निन्दा करता है इसे मैं सहन नही करसकता. यह पागलपन है; यह बुरा जनून है, यह महा पाप है.

कोई विनयसम्पन्न शिष्य आज भी होगा ?"
मुनिने उत्तर दियाः " आज भी ऐसे विनीत
शिष्य है." इतने मात्रसे ब्राह्मणके चित्तका
समाधान नही हुआ जानकर अपने शिष्य सु-
न्दरजीको बुलाया. उस समय सुन्दरजी एका-
न्तमें बैठकर सज्झाय-ध्यान कर रहे थे. गुरुके
शब्द सुनते ही सुन्दरजी आ गये और हाथ
जोड वन्दना कर खडे २ आज्ञाकी प्रतीक्षा
करने लगे. मुनिके ब्राह्मणके साथ बातचीत
में लगे होनेसे कुछ उत्तर नही मिला. इससे
सुन्दरजी बहुत देर ठहरनेके बाद फिर अपनी
जगह आ गये. फिर आवाज आई और गुरु
के पास जा पहुंचे. और कितनी देर तक
खडे रह कर वापस आ गये. यों दस पन्दरह
वार वे बुलवाये गये और दस पन्दरह वार
वे गये और आये.

शिष्यका ऐसा विनय देख कर ब्राह्मण-
को आश्चर्य हुआ और उसने मुनिके वचन
सत्य कर मान लिये. फिर जैनधर्मकी, महा-
मुनिकी और सुन्दरजीकी स्तुति की. और
बोलाः " हे मुनिराज ! मेरे घरमें १०००

श्लोकका ग्रन्थ है उसका अर्थ मैं नही समझता; कृपा कर आप उसे मुझे समझा दें तो मैं आपके पास हाजिर लाऊं." मुनिने उत्तर दिया कि "वक्तपर देखी जायगी." दुसरे रोज प्रातःकालमें ब्राह्मण ग्रन्थ ले आया तब मुनिने कहा "आज ग्रन्थ हमारे पास रहने दो जो हम देखलें; कल तुम्हें अर्थ बतायगे." ब्राह्मणने वैसाही किया. तब महामुनिने ५०० श्लोक अपने शिष्य सुन्दरजीको दिये और बाकी ५०० स्वयं याद किये. रातमें प्रतिक्रमण किये बाद एक दुसरेसे श्लोक सुनकर दोनोंने सब श्लोक यादकर लिये. फिर जब प्रातःकालमें ब्राह्मण आया तब उसे पुस्तक देकर कहा कि "तुम्हें जो पूछना हो पूछो." ब्राह्मणने पुस्तक लेकर उसमेंका एक श्लोक कहींसे निकालकर पूछा. तब महामुनिने श्लोक मुखसें पढकर अर्थ समझाया. इससे ब्राह्मण चकित होकर पूछने लगा कि "हे महामुनि! यह ग्रन्थ आपको कबसे कंठ है?" मुनिने कहा "कल ही हम तुम्हारे ग्रन्थसे सीखे है" यह बात सुन ब्राह्मणको बडी खुशी हुई. मु-

निकी स्तुति कर उनके वचनको प्रमाण कर जिनमार्गका प्रेमी हो गया.

इस तरह श्री धर्मसिंह मुनिने बहुतसोंको ज्ञानी किया. वे गुजरात काठियावाडमें ही विचरे थे. गठियासे पीडित होनेके कारण वे दूर २ का विहार नहीं कर सकते थे. ४३ वर्षतक दीक्षाका पालनकर १७२८ के आसोज सुद ४ के दिन वे स्वर्गवासी हुए.

इस मुनिने कितना अभ्यास किया था इसके बारेमें खात्रीसे कहनेके लिये मेरे पास कोई प्रमाण नही है तो भी उनका किया हुआ जैन साहित्यका बढावा ही उनके अगाध अभ्यास और शक्तिका विचार बंधानेके लिये काफी है. भगवतीजी. जीवाभिगमजी, पन्नवणाजी, चंदपन्नती और सूर्यपन्नती इन पांच सूत्रोंको छोडकर सत्ताईसही सूत्रके टब्बा—इनके सिवाय नीचे लिखे ग्रन्थ भी कम प्रमाण नही हैं:—

(१) समवायांग सूत्रकी हुंडी
(२) भगवतीजीका यंत्र
(३) पन्नवणाजीका यंत्र

(४) ठाणांगजीका यंत्र
(५) रायपसेणीका यंत्र
(६) जीवाभिगम, जंबुद्वीप पन्नती, चंदपन्नती और सूर्यपन्नतीके यंत्र
(७) व्यवहारकी हुंडी
(८) सूत्रसमाधीकी हुंडी
(९) द्रौपदीकी चर्चा
(१०) सामयिककी चर्चा
(११) साधु समाचारी
(१२) चन्द्रपन्नतीकी टीप

और भी कितनेही ग्रंथ हैं.

ऐसा विशाल साहित्य विरसेमें देनेवाले गुरुका उपकार कौन भूलेगा ? परन्तु उपकार न भूलनेकी परख कुछ मुखके शब्दोंसे नहीं हो सकती, वह तो अनुयायियोंके वर्तावसे होती है.

मैं मानता हूं श्रीमान धर्मसिंहजीके अनुयायियोंने अपनेको विरसाके योग्य ठहरानेके लिये कुछ कर दिखाना चाहिए. जिन ग्रन्थोंके बनानेमें अत्यन्त विद्वत्ताकी आवश्यकता पडी है

उन ग्रन्थोंकी शुद्ध प्रतियां कराकर किसीने अभीतक प्रकाशित करनेकी दरकार न की. चंद्रपन्नती और सूर्यपन्नती ये ऐसे कठिन सूत्र हैं कि जिनमें वडों वडोंकी चंचु नही गडती. ऐसे गंभीर विषयको सरल करनेके लिये श्रीमानने-धर्मसिंहजीने 'टीप'(Notes) बनाई है; परन्तु इनका लाभ अभीतक बडे २ सन्दूकोंके सिवाय और किसीको नहीं मिलता यह बडे खेदकी बात है. द्रौपदीकी शास्त्रानुसार चर्चा द्वारा, प्राचीन जैनोंमें मूर्तिपूजा न थी इस बातको साबित करनेवाले महामुनिकी 'हुंडी' (Pamphlet) आज किसीके जानमें भी नही है. 'साधु समाचारी' *या साधुओंका कायदा आज बडे अन्धकारको दूर कर सकता है परन्तु उसे प्रकाशित किया जावे तबन ! संक्षेपमें जो श्रीमान धर्मसिंहकी कृति (Works)

---

*यह ग्रंथ इस समय दरियापरी गच्छमें नही है परन्तु मारवाड तरफके किसी मुनिके पास होना संभव है. श्री सौभाग्यमल्लजीकी 'समाचारी' में इस समाचारीकी 'शाख' दी गई है.

प्रकट किया जावे तो केवल संघको ही नहीं बल्कि सब भव्य जीवोंको बहुत लाभ होवे, इतना ही नही जैन धर्मकी कीर्तिमें भी वृद्धि होगी. हम पूर्णरीतिसे चाहते है कि ऐसा समय जल्दी ही आवे.

श्रीमान पूज्य धर्मसिंहजीके अनुयायी.

श्री धर्मसिंहजीकी पाटपर उनके बाद उनके शिष्य सोमजी ऋषि हुए. इसके बाद तीसरे पाटपर मेघजी ऋषि हुए. फिर (४) द्वारकादासजी (५) मुरारजी (६) नाथजी (७) जयचंद्रजी और (८) मुरारजी ऋषि हुए.

श्री मुरारजीके शिष्य सुन्दरजीके ३ शिष्य थे. (१) नाथा ऋषि (२) जीवनजी ऋषि (३) भागजी ऋषि. तीनों प्रभावशाली थे. श्री मुरारजीकी मौजूदगीमें ही सुन्दरजीके गुजर जानेसे उनकी पाटपर नाथाजी ऋषि बैठे.

(९) नाथाजी ऋषिके ४ शिष्य हुए: शंकरजी, नानचन्दजी, भगवानजी, और खुशालजी; चारों विद्वान थे.

(१०) नाथाजीके गुरुके भाई जीवन ऋषि.

(११) श्री प्रागजी. इनका इतिहास जानने योग्य है. ये वीरमगामके भावसार रणछोडदासजीके बेटे थे. पहले तो ये सुन्दरजीका उपदेश सुनकर बारह व्रतधारी श्रावक हुए. और अखीरकार कितनेक वर्षतक श्रावक पर्याय पालन करे बाद 'खराखरीके खेल' रूप दिक्षा अंगीकार करनेको तत्पर हो गये. परन्तु उनके मत्बापने उन्हें रोका इससे उन्होंने भीखके टुकडे मांगकर खाना शुरू किया. सूरतमें दो महीने भीख मांगकर खानेसे माबापने अपनेसे विटला हुआ समझकर दीक्षाकी परवानगी दे दी. बाद १८३० में भारी ठाठसें इन्होंने दीक्षा लेली. इन्होंने सूत्र-सिद्धान्त अंग-उपांगका अभ्यास किया और बडे प्रतापी हुए. अपने गुणोंसे इन्होंने पूज्य पदवी पाई. त्रीकमजी, मोतीजी, झवेरजी, केशवजी, हरि ऋषि, पानाचंद आदि इनके १५ शिष्य हुए. अमदावादसे नैऋत्यमें ७ कोसपर विसलपुर एक गांव है वहांके दृढधर्मी श्रावकोंके अर्ज करनेसे

पूज्य वहां पधारे. इन्होंने प्रांतिज, इडर, वीजापुर खोरासु वगैरा क्षेत्रोंमें फिरकर धर्मको फैलाया और अन्तमें पैरमें दर्द होजानेके कारण विसलपुरमें २५ वर्षतक निवासकर १८९० में स्वर्ग गमन किया. इनके समयमें अमदावादमें इस धर्मके मुनि कदाचित ही आतेथे; क्यों कि चैत्यवासियोंका जोर ज्यादा था और इससे वहुत परिसह सहन करने पडते थे. यहांतक कि कोई श्रावक इस धर्मकी क्रिया पालन करता हुआ जान पडता तो उसे जातिवहार करदिया जाता था. इस स्थितिका सुधार करनेके लिये आगजी ऋषि अमदावाद आये और सारंगपुर तलियाकी पोलमें गुलावचंद हीराचंदके मकानपर उतरे. इनके उपदेशसे गिरिधर शंकर, पानाचंद्र झवेरचंद, रायचंद्र झवेरचंद और उनके कुटुम्ववालोंको इस धर्मकी श्रद्धा हुई. इन श्रावकोंने मुनीओंकी मदद और अपनी उदारतासे इस शहरमें धर्मका प्रचार किया. परन्तु इससे मन्दिरमार्गी श्रावकोंमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई, आखिर संवत् १८७८ में दोनों ओरका मुकद्दमा कोर्टमें पहुंचा. सरकारने

दोनोंमें कौन सच्चा इसका इनसाफ करनेकेलिये दोनों ओरके साधुओंको बुलवाया. इस ओरसे पूज्य श्री रूपचंदजीके शिष्य श्री जेठमलजी वगैरा २८ साधु उस सभामें रहनेको चुने गये. साम्हनेवाले पक्षकी ओरसे वीरविजय आदि मुनि और शास्त्री हाजिर हुए थे. मुझे जो याद मिली है उससे मालुम होता है कि "मूर्तिपूजकोंका पराजय हुआ; चेतन पूजकोंका जय हुआ." शास्त्रार्थसे वाकीफ होनेके लिये जेठमलजी कृत 'समकीतसार' पढना चाहिए.

उक्त शास्त्रार्थ की यादमें इस पक्षके केप्टन श्री जेठमलजीने शास्त्रानुसार 'समकीत सार' ग्रन्थ रचा और साम्हे वाले पक्षकी ओरसे उत्तम विजयने एक 'ढुंढक मत खंडन रास' नामसे ९७ कडीका 'रासडा' बनाया है! 'समकीतसार' के २३ फार्ममें सूत्र पाठ अर्थ और दलीलें भरी हुई हैं, तब १ फार्म के रासडेमें विजयजीने प्रतिपक्षियोंको ढेढ, कुत्ते, गधे, वहनको व्याहने वाले, ऊंट, कुमति, चोर, बन्दर आदि शब्दोंका उदारतापूर्वक

उपयोग कर अपनी लायकी दिखलाई है. इस कूडे करकट में गिरने लायक रासडेमेंसे सार खींचने से मुझे तो इतना ही मिला कि:—

(१) १८७८ के पोससुद १३ के दिन मुकद्दमेका जजमेंट (फैसला) मिला और

(२) प्रतिपक्षियोंके लिखने मुजब:—
"जेठो रिख आव्यो रे, कागल वांची करीः
"पुस्तक बहु लाव्यो रे, गाड्डं एक भरी."

इससे सिद्ध होता है कि जेठमलजीका पठन पाठन बहुत ही बढ कर था, और प्रतिस्पर्धी जब गाली गलोच करनेमें वीर थे तब ये शास्त्रोंके ज्ञानमें 'मस्त' थे.

दोनों पक्ष अपनी जीत और दूसरेकी हार प्रकट करते हैं. परन्तु किसी प्रकारके लिखित प्रमाण के अभावमें मैं किसी प्रकारकी टीका करनेको प्रसन्न नही हूं. हां इतना अवश्य चाहूंगा कि दोनों ओर के कोइ संशोधक, वृद्ध पुरुष या साधुजी (१) मुकद्दमेका नंबर (२) तारीख माह और सन (३) मुकद्दमेका सबब (४) पक्षकारोंके नाम व गांव (५)

जजका नाम (६) फैसलेकी नक्ल या सार और जहांतक बने पक्षकार और गवाहियोंका सवाल जवाब; इनमेंसे थोडी बहोत भी हकीकत इकट्ठी करेंगे. ऐसी हकीकत का अच्छी तरह तलाश किये बाद ही हाल जाहिर करनेका इरादा है. यह इस लिये नही कि किसीको हारा जीता कह कर हारने वाले की निन्दा की जाय—क्लेश बढाया जाय; परन्तु इस लिये कि यह एक ऐतिहासिक घटना है इसे छोडी नही जा सकती. इतना ही नहीं बल्कि इससे दोनो पक्षको अच्छी शिक्षा भी दी जा सकेगी.

झगडेको दूर कर अब हम भागजी के समयकी एक उत्तम परिपाटीको देखें और इतिहासको आगे बढावें. श्री भागजी मुनिके समयमें उनके समुदायके ७५ साधुजी और अनेक साध्वीजी विद्यमान थे, परन्तु वे एक आम्नाय में विचरते थे. एक ही 'मास्टर' के हुक्मको वे 'तेहेत' (तथ्य) मानते थे इससे संप अच्छा रहता था. तेरे पंथमें अब भी ऐसाही व्यवहार है. अब रोज २ इस बातकी

जुरूरत मालूम होती जाती है; स्थानक वासी या साधुमार्गी जैन धर्मका उपदेश करनेवाले सब गच्छोंको फिर इसी चाल–रूढीको ग्रहण करना चाहिए.

(१२) शंकर ऋषि (१३) खुशालजी (१४) हर्ष सिंहजी (१५) मोरारजी (१६) झवेरजी (१७) पुंजाजी (१८) भगवानजी (१९) मलुकचंदजी (२०) हीराचंदजी (२१) पाटपर श्री रघुनाथजी महाराज विराजे. विरमगांवके रहने वाले भावसार, पिता डाह्याभाई, माता जवलबाई, जन्म ११०४ संवत् १९२० के महासुद १५ के दिन पूज्य श्री मलूकचंदजी स्वामीके पास गांव कलोलमें दीक्षा ली. वढवाण निवासी गोकुलभाई लघुभाई तथा अमदावाद निवासी छगनलाल मूलचंद इन दोनोंने वढवाणमें चतुर्विध संघके सामने १९४० के फागन सुद १ बुधवारके दिन आचार्य पद दिया.

पूज्य श्री इस समय विद्यमान हैं. आपका स्वभाव शान्त है.

इस समुदायमें २५ साधुजी और ५८

आर्याजी इस समय विद्यमान हैं.

पूज्य श्रीने समयको पलटा हुआ देख धार्मिक उन्नतिके लिये कुछ नियम कायम करनेके लिये इसी साल (१९६५ के पोसमें) साधु सभा भरी थी, और कितने ही सुधारके नियम कायम किये (जो अभी तक पाले नही जाने लगे.)

दूसरे धर्मसुधारक (Martyr)श्रीमान लवजी ऋषि.

मैं कह गया हूं कि संवत् १६८५ में श्रीमान धर्मसिंहजी सुधारक हुए और १६९२ में श्रीमान लवजी हुए. इन दोनोंके सिवाय उसी असेंमें तिसरे धर्म सुधारक (१७१६) और हुए. इनमेंसे पहलेका और उनके अनुयायियोंका हाल लिख चुके अब दूसरेके विषय में जो हाल मुझे मालूम हुए हैं वे प्रकाशित करता हूं.

सूरतके एक लखपति दशा श्रीमाली बनिया वीरजी वहोराकी बेटी फूलबाइका ल-

वजी नामका पुत्र था. यह बडा चंचल था. यति वज्रांगजीके पास शास्त्राभ्यास किया. धर्मकी वारीक २ बातों पर ध्यान देनेसे उन्हें जान पडा कि वर्तमान समयके यति शास्त्रोक्त व्यवहारका पालन नही करते. और विचार आया मैं स्वयं शुद्ध धर्मका प्रचार करूंगा. परन्तु उनके दादाने वज्रांगजीके पास ही दीक्षा लेनेकी फरज डालनेसे पहले तो यति पन स्वीकार किया फिर जैसे धर्मसिंह और शीवजी ऋषिके बीचमें शुद्धाचारके लिये वार्तालाप हुआ था वैसे इन दोनों गुरु शिष्योंमें चर्चा होनेसे (दो वर्ष यति पन पाले बाद) लवजीने भी यतिसे साधु पण स्वीकार किया. अपने साथ भाणाजी और सुखोजी यतिको भी साधु बनाया. खंभातमें अपने आप दीक्षा ली. दीक्षा की सालके बारेमें दो मत प्रचलित है; मेरे मतमें १६९२ संवत में दीक्षा ग्रहण की मालूम होती है परन्तु एक पट्टावलीमें मेरे पढनेमें आया है १७०५ में श्री लवजीने दीक्षा ली.

खंभातमें श्रीमान लवजी ऋषिका उपदेश

सुनकर बहुत मनुष्य उनकी तारीफ करने लगे. परन्तु उनकी यह कीर्ति स्वयं उनके नाना (संसार पक्षके) वीरजी वोरासे ही सहन नहीं हुई. अपने 'कुलगुरु'से ज्ञान पाकर एक मनुष्य कुछ और तरहकी प्ररूपणा करे यह उनसे कैसे सहा जावे ? उन्होंने खंभात के नवाबको गुप्त रीतिसे लिखा कि लवजीको गांवमें न रहने देना चाहिए. नवाबने उस चिठीको पढ ऋषिको अपने डेरेके पास रोक रक्खा. ऋषि, आर्तध्यान और रौद्रध्यानका विचार भी न कर धर्मध्यान करने लगे; सज्झाय करने लगे. यह देखकर वेगमने कहा: "सांई लोगोंको नाराज़ करनेमें कुछ सार नहीं है" इससे मुनिको छोड दिये. वहांसे विहार कर मुनि कलोदरा होते हुए अमदाबाद आये और ओसवालोंमेंसे बहुतसोंको धर्म ग्रहण कराया. इस समय कालुपुरके दशापोरवाड श्रावक सोमजीने २३ वर्षकी उम्रमें इनके पास दीक्षा ली.

मेरे पासकी एक पट्टावलीमें लिखा है कि ये चारों मुनि लवजी, भाणोजी, सुखोजी,

सोमजी स्थंडील भूमिसे पीछे लौट रहे थे उस समय इनमेंके एक मुनि पीछे रह गये. उन्हें कुछ यति मिले. ये यति रस्ता बतलानेके बहाने मुनिको अपने मंदिरमें ले गये और तल्वारसे मारकर वहीं मुनिके शवको गाड दिया. जब दुसरे साधुओंने उस साधुकी तलाश की तब एक सोनीके कहनेसे सब समाचार मालुम हुए. श्रीमान लवजी ऋषिने ये सब कठिनाइयां वज्रकी छाती कर सहन की और कोई प्रकारके वैरको हृदयमें स्थान नही दिया; उलटा उत्तेजित हुए श्रावकोंको उन्होंने रोका और समझाया कि ' धर्म सहन करनेमें है, लडनेमें नही ' और साथ ही सांसारिक और पारमार्थिक धर्मका भेद समझाया. सारी दुनियाको–८४००००० जीवाजूणके जीवोंको हमें आत्मवत्–अपने तुल्य ही समझना है तो फिर हमें समझना चाहिए कि हमारी आत्माके सब रूप हैं. इन रूपोंमेंसे यदि किसीसे अपराध हो तो और उसका बदला लें तो वह हमें ही भारी पडेगा, क्यों कि वह भी हमारा ही रूप है ! कैसी सुन्दर

फिलासफी ? कैसा श्रेष्ठ धर्म ! कैसी जगहित्त-कारक शिक्षा !

मुनिश्री अब बुरानपुर गये. यहां उनके श्रावक कदाचित कुछ ज्यादा नुकसान पहुंचावे ऐसे डरसे श्री संघने २५ घरको अपनेसे अलग करदिया. यहांपर मुझे वस्तुस्थितिका हाल बतलाना जुरूरी है. धर्म कैसी कठिनतासे पालन होता है ? सच्चे जिज्ञासु कैसे दृढ और सहनशील होते है ? यह जाननेका यह अच्छा मौका है. १० हजार घरके साम्हने श्रीमान् लवजीके अनुयायी केवल २५ घर थे ! प्रवल पक्षने इनको यहांतक तकलीफ पहुंचाई कि कुओंपर पानी न भरनेदेनेका, धोबी नाईके द्वारा इनका काम न होने देनेका खास इंतिजाम किया था. इस समय इन २५ घरोंमें जो श्रीमंत थे उन्होंने वाकीके मनुष्योंकी पैसेकी पूरी २ सहायता की. जब विपत्ति असह्य हो पडी तब इन पचीसों घरोंके अग्रेसर कपडे लत्ते लेकर दिल्ली अर्ज करनेको गये. वे बहुत दिनों बाद वहां पहुंचे. परन्तु वे वहां जाकर बादशाहसे मिलें उसके पहले

ही प्रतिपक्षियोंके वकीलने शाहके कान भर रक्खे थे और ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा था कि इन लोगोंकी बादशाहसे मेल मुलाकात ही न होने पावे. इतनेमें ही दैवयोग्यसे वहांके काजीका बेटा सांपके काटनेसे-डसलेनेसे मरनेकी तैयारीमें था. उसे इन पचीसोंमेंसे १ ने नमोकार मंत्रके प्रभावसे आराम कर दिया इससे काजी खुश हो गया. और उसने कचहरीमें जा बादशाहसे सब हाल कहे. बादशाहने मुनासिब काररवाईका हुक्म दिया. फौरन काजी एक फौज लेकर उन २५ श्रावकोंके साथ अमदावाद आया. मंदिरमें खोदकर देखनेसे साधुका शव निकल आया इससे काजीको बडा क्रोध आया, उसने मन्दिरको खोद फेंकनेका हुक्म दिया. परन्तु उन २५ श्रावकोंकी विनय सुन इस विचारको छोड दिया. और इस धर्मको अङ्गीकार कर सख्त हुक्म दिया कि इस धर्मके किसी भी मनुष्यको कोई कुछ हानी न पहुंचासके. सुना गया है कि 'पार्श्वस्तुति' आदि कितनी ही स्तुतियां इनकी बनाई है. इसके बाद ही गुजरातमें इस

धर्मका प्रचार हुआ.

महापुरुष श्री लवजी ऋषि अपने शिष्य श्री सोमजी ऋषिको पाटपर बिठलाकर संथारा कर स्वर्गगामी हुए. श्री सोमजी ऋषि बुरानपुर गये. वहांपर उन्हें कहानजी नामके शिष्यका लाभ हुआ. इन कहानजी ऋषिके नामका समुदाय अभी दक्षिणमें मौजूद है. (दक्षिण हैदराबादमें विचरते हुए बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलखचंदजी जिन्होंने 'जैनतत्वप्रकाश' नामका बडा ग्रन्थ बनाया है इसी समुदायमें हैं.)

छठ छठके पारणा करते हुए सोमजी ऋषि बुरानपुरके पास गये वहां किसी यतिकी खटपटसे एक रंगरेजने जहर मिला हुआ लड्डु इन्हे बोहरा कर जिव लिया. जब इसका हाल सबको मालूम हुआ तब यतिओंके आचरणसे उनके अच्छे २ भक्तोंकी भी श्रद्धा हट गई इतना ही नही उलटा वे साधुमार्गी बन गये. ऊपर लिखी पट्टावलीके सिवाय एक दूसरी पट्टावलीमें यह लिखा है कि यह विषभरा

लड्डु स्वयं लवजीको दिया गया.

दरियापुरी समुदायकी एक पट्टावली जाहिर करती है कि श्रीमान लवजी ऋषि श्रीमान धर्मसिंहजीसे अमदावादमें मिले थे परन्तु छहकोटी आठकोटी सामायिक संबन्धमें, आयुष्य क्षय होनेकी मान्यतामें—इस तरहकी कुछ २ बातोंमें मतभेद होनेसे दोनों एक न होसके. इस मुनिका परिवार गुजरात व मालवामें है. उनके कुल साधु आदि की याददास्त न मिलनेसे यहां नही लिखी; मिलनेपर दूसरे भागमें प्रकाशित होगी.

तीसरे धर्मसुधारक श्रीमान धर्मदासजी.

तीसरे धर्मसुधारक श्रीमान धर्मदासजी थे. आजतक इनकी सच्ची हकीकत जाहिर करनेका किसीने यत्न नही किया. जो कुछ हाल मिलते हैं वे पूरे नही है. कितनेही वृत्तान्त दन्तकथाके ऐसे हैं. इन सबमेंसे मुझे जितना ठीक मालूम हुआ उसका सार यहांपर लिखता हूं.

इस महात्माको भी यतिओंका सढेलपन

अच्छा न लगा और इसीसे वे सच्चे साधुकी तलाशमें निकले. ये अमदावादके पासके सरखेज गांवके भावसार थे. इनके पिताका नाम जीवण कालिदास था. इन्हें एकलपात्री साधुकी श्रद्धा थी. ये धर्मसिंहजी और लवजी ऋषिसे मिले. परन्तु वहां भी इनका चित्त स्थिर नही हुआ. चित्त क्यों न स्थिर हुआ इसका रहस्य तो सर्वज्ञ प्रभु जाने; बाकी हम जैसे सामान्य मनुष्य तो ऐसा अनुमान कर सकते है कि पहले दो मुनियोंमें उन्हें या तो पूर्ण शुद्धता न मालूम हुई होगी या अपना अलग ही समुदाय कायमकर ज्यादा नाम हासिल करनेकी इच्छा हुई होगी. दोनोंमें से कोई भी कारण क्यों न हो परन्तु इससे हमें शर्म आती है. तीन जबरदस्त आचार्य एकाकर इकठे न रहसके और दो दो चार २ बोलकी भिन्नताके कारणको लेकर अपने अलग २ वाडे भर लिये, मेरी अल्प बुद्धिके अनुसार इस तरकीवसे जैन धर्मका बड़ा नुकसान हुआ. इस तीनके तेरहसो भेद पड़े ! जब संस्थापक ही एकताकी कीमतको न समझे

सकते हों तो उनके अनुयायियोंको क्या दोष देना ?

इतना इतिहास लिखे बाद मैं पढनेवालोंका ध्यान एक बातपर खींचना चाहता हूं कि 'स्थानकवासी' या 'साधुमार्गी' जैन धर्मका जबसे पुनर्जन्म हुआ—जबसे यह धर्म अस्तित्वमें आया तबसे आजतक यह जोर-शोरपर था ही नहीं—अरे इसके कुछ नियम ही नही थे. यतिओंसे अलग हुए और मूर्तिपूजाको छोडा कि 'ढूंढिया' हुए यह विचार-मत इस धर्मके लिये प्रसिद्ध था. जैसे एक भाषाका व्यवहार करनेसे अलग २ प्रान्तमें रहनेवाली भी मनुष्यजाति एक प्रजा Nation कही जासकती है. परन्तु भारतमें एक प्रजा है ही नही, वैसे ही एक रचनासे चलनेवाले अलग २ गांवके संघ और साधु कभी इसमें न थे और न हैं. जिसकी मरजी आवे वही "और सब अनाचारी हैं और मैं ही केवल शुद्ध हूं इसलिये मैं अकेला ही विचरुंगा" ऐसा कहकर अलग संघाडा कायम करले और वह भी स्थानकवासी समझा जावे ! 'प्रजा' पनमें जैसे एक

ही भाषा चाहिए वैसे धर्ममें एक ही प्रकारकी रचना चाहिए. जैसे भारतमें एक भाषा नही है वैसे ही स्थानकवासी जैन धर्मके लिये एक ही प्रकारकी गोठवण नही है (प्रभु! यह स्थिति जल्द परिवर्तित हो!) इसीसे सब अपनी डेढ चावल की खिचडी जुदा ही पकाते हैं !

दन्तकथा है कि धर्मदासजीने दीक्षा ली उसी रोज कुम्हारके यहांसे गोचरीमें राख ली, वह कुछ पात्रमें गिरी, बाकीकी हवामें उड गई. यह बात उन्होंने धर्मसिंहजीसे कही, उन्होने इस कौतुकका खुलासा किया कि इससे यह बात सूचित होती है कि तुम्हारे बहुत शिष्य होंगे और चारों ओर फैल जायगे. इनके ९९ शिष्य हुए. लींबडी समुदायकी पट्टावलीमें लिखा है कि तेरापंथी, मारवाड-मेवाड-पंजाब-लींबडी-बोटाद-सायला-ध्रांगध्रा-चुडा-कच्छ-गोंडल के संघाडे इसी वृक्ष की शाखाएं हैं. इसके विरुद्ध जबतक कोई हाल प्रमाणित न हो जाय तबतक मैं इस वृत्तान्तको सत्य समझता हूं. इस समुदाय की पट्टावली परसे कुछ मुद्दे नीचे प्रकट करता हूं.

इस पट्टावलीके कहनेके मुआफिक धर्मदासजीने १७१६ में अहमदावादके वाहर वादशाहकी वाडीमें दीक्षा ली (हमको इस वातका प्रमाणिक अभिमान है कि सव प्रताप हमारे अहमदावादका है !)

इनके समुदायके रघुनाथजी महाराजके समयमें उनके शिष्य भीखमजीने अलहदा हो तेरा पंथ चलाया. इस पंथके लिये ऐसी दंतकथा कही जाती है कि भीखमजी मुनि आहार पाणी वेर लाये. उसे खुला ही छोड दिया. अचानक गरम पाणीमें ऊंदरा गिर कर मर गया, इस पर गुरुने उपालंभ दिया. शिष्यने कहा: "मैने इसे नही मारा; आयुष्य पूर्ण हो जानेसे वह मर गया उसका मैं क्या करूं ?" आखिर यह साधु १८१५ के चैत्र सुद ९ शुक्रवारके दिन (वार तक लिखा हुआ है !) १३ साधुओंको साथ लेकर अलग हो गये और तेरापंथी कहलाये. उन्होने ऐसी प्ररूपणा की: 'मारते जीवको रोके-छुडावे तो पाप लगे' ! मेरा मत है कि दिगम्बर मतके वारेमें जैसी गप्प ग्रठ ली वैसेही यह तेरापंथ

के जन्मके वारेमें घडी हुई गप्प है. वैसे ही मारते जीवको छुडाने में पाप मानने वाली वात भी तेरापंथ पर तोहमत रक्खा गया होना चाहिए. जबतक मैं तेरापंथी किसी विद्वान् से मिलकर इस संबंध की उस की दलीलें न सुन लूं तबतक इस वातको नही मानता. हम लोगोंमें ऐसी प्रथा हो गई है कि अपने सिवाय सबको मूर्ख-सबको नीच-सबको पापी ठहरानेके लिये चाहे जैसी वातें घड लेते हैं. हिन्दुस्थानके हरेक धर्ममें थोडी बहुत ऐसी धांधल होती है. जो तेरापंथके स्थापक इस वारेमें कि "केसे संबंधमें मारते जीवको नही छुडाना ?" कुछ बुद्धिग्राह्य खुलासा कर सकते हों तो हम उनकी निन्दा नही कर सकते. सामान्य मनुष्य रज का गज -बातका वतंगड कर डालते हैं और साधुओंसे अज्ञ मनुष्यों को फटा लेते हैं, इर्ष्याग्नि झुंड खडा कर देते हैं. इस लिये 'सेकंड हेंड' खवरों पर विश्वास न कर जबतक स्वयं अनुभव न हो जाय मैं तो कभी विश्वास न लाऊंगा.

१२ साधुओंमेंसे रूपचंदजीको बारह साधुओंने गुरु किया. परन्तु न जाने क्यों दुसरे ही साल रूपचंदजीने इस गच्छको छोड दिया. वैसे ही १८३६ में पालनपुरके श्राव-कोंने भी इस मतको त्याग दिया.

' बाइसटोला. '

श्रीमान् धर्मदासजी के ९९ शिष्योंमेंसे ९८ मारवाड-मेवाड-पंजाब की ओर विहार कर गये और 'बाईसटोला' के नामसे प-ख्यात हुए. यद्यपि एक छपी हुई पट्टावलीमें ऐसा ही लिखा है परन्तु मुझे पंजाब की मुसा-फरीमें वहांके मुनिवरोंसे जो हाल मालूम हुए हैं वे और तरह के हैं. उन्हे मैं एक अ-लग ही प्रकरणमें लिखुंगा. ९९ मेसें ९८ शिष्योने मारवाड आदि प्रान्तमें विहार किया और बडे शिष्य मूलचन्दजीने अहमदाबादमें रह कर गुजरातमें धर्मका प्रचार किया. इन-के ७ शिष्य थे: गुलाबचंदजी, पंचाणजी, वनाजी, इन्द्रजी, बनारसीजी और इच्छाजी.

काठियावाडके संघाडेकी उत्पत्ति.

लींबडी संघाडा:—लिंबडी के श्रावकों-
के आग्रहसे श्री इच्छाजी स्वामी वहां गये
और गद्दीकी स्थापना की (१८४५) लिंबडी
समुदायकी ओरसे छपाई हुई पट्टावलीमें
लिखा है: "इस समय तक इस गांवमें सब साधु
इकठे रहते थे" पहलेके सब साधु इकठे र-
हते थे और अब इस पराक्रमी साधुके "प-
वित्र चरणोंके" पडनेसे साधुओंमें भेदभाव
अनैक्य हो पडा! एकसे बिगडे दो वाली बात
हुई! और ऐसे २ मामलोंके लिखनेमें उनके
भक्त-'वडा भारी बनाव' समझकर अभिमान
समझते हैं. मैं सिर्फ लिंबडी समुदायके लिये
ही नही कहता, मेरी यह नुकताचीनी सब
संघाडोंके लिये हैं. विद्वान साधु हुआ कि "मैं
मैं तु तु' चली ही है. पवित्र और विद्वान पु-
रुषका काम दोसे एक करनेका है, न कि एक
के दो करनेका. संघाडेका क्या आशय होना
चाहिए? इस वक्त क्या समझा जाता है?
और इसका परिणाम क्या हुआ है? इन प्र-

ओंके संबंधमें मैं किसी दूसरे मौके पर कहूंगा.

गोंडल संघाडाः—श्री पंचाणजीके शिष्य श्री रतनजी तथा श्री डूंगरशी स्वामी गोंडल गये तबसे 'गोंडल संघाडा' कहलाया.

बरवाला संघाडाः—श्री बनाजीके शिष्य श्री कहानजी स्वामी बरवाले गये तबसे 'बरवाला संघाडा' हुआ.

चुडा संघाडाः—श्री बनारसी जीके शिष्य श्री जयासिंहजी तथा श्री उदयसिंहजी स्वामी चुडा गये तबसे 'चुडा संघाडा' हुआ.

कच्छी संघाडाः—श्री इंदरजीके शिष्य श्री करशनजी स्वामी कच्छ गये वहां दरियापुरी संप्रदाय की आवश्यक की प्रति बांचने से उन्हें आठ कोटी मत अच्छा मालूम हुआ इस से उन्होंने आठ कोटी मतकी प्ररूपणा की तबसे कच्छ आठ कोटी समुदाय कहाया.

ध्रांगध्रा संघाडाः—श्री विठ्ठलजीके शिष्य श्री भूखणजी स्वामी मोरवी जाकर वहां रहे परन्तु उनके शिष्य वशरामजी ध्रांगध्रा गये और "ध्रांगध्रा संघाडा" कहलवाया.

इन सब काठियावाडी संघाडेके सिवाय श्री इच्छाजी स्वामीके शिष्य श्री रामजी ऋषि लींबडीसे उदयपुर गये वहां 'उदयपुर संघाडा' स्थापित हुआ.

इन सब संघाडोंके साधु मुनि महाराजाओंकी याद, उनका अभ्यास, प्रत्येक गांवके श्रावकोंकी संख्या आदिके संग्रह करनेका काम कान्फ्रैंस आफिसकी ओरसे हो रहा है इस लिये मैंने इस बारेमें माथाकूट करनेकी आवश्यकता न समझी. कांफ्रैंस जहांतक होगा इस कामको जल्दी ही पूरा करेगी तब मैं इस पुस्तकका दुसरा भाग प्रकाशित करूंगा उसमें मैं सब विगत पूरी तरहसे प्रगट करूंगा.

जुदे जुदे समुदाय इसतरह प्रगट हुए. ज्यादा समुदाय या ज्यादा संघाडे हो इसका मुझे खेद नही है परन्तु जिन २ कारणोंसे संघाडे हुए मैं उनको पसन्द नही करता. और ऐसे क्षुद्र कारणोंसे अलग होकर फिर उसकी प्रशंसा करना दूना अपराध है. सब साधुओंपर काबू रखनेके लिये एक ही साधु हो इसकी अपेक्षा, कई विभाग कर एक

एक विभाग पर एक एक गुरु हो यह ज्यादा लाभदायक है. परन्तु ये अलग २ विभाग एक दूसरेसे अलग २ न होने चाहिए. जुदाई इस समय खुल्लम खुल्ला वरती जाती है. इसीलिये इतनी नुकताचीनी करनेकी जुरूरत पडी है.

अब हम इतिहासकी डोरको फिर हाथमें लेते हैं. श्री इच्छाजी स्वामीके गुरुभाई गुलाबचंदजीके शिष्य वालजी, उनके शिष्य श्री हीराजी स्वामी और उनके शिष्य श्री कहानजी स्वामी हुये. इन कहानजीके शिष्य अजरामरजी महाराजने लींबडी समुदायको खूब प्रसिद्ध किया. वे जामनगर तावेके पडाणा गांवके वीसओसवाल थे. इन्होंने जैन दीक्षा ली उसके पहले उन्हें गुसाइ पंथके गद्दीधर बननेके लिये कहा गया था परन्तु वे इस लालचमें न आये. उसी सालमें १८१९ में उन्होंने जैन दीक्षा ली और सूरत जानेके लिये चल दिये. मार्गमें तप गच्छके श्री पूज्य श्री गुलाबचंदजी मिले इनसे उन्होंने सूरत जाकर योगशास्त्रका अभ्यास किया. लींमडी

समुदायकी पट्टावलीके लेखकने इस यतिके उपकारमें एक भी शब्द नहीं लिखा. योगशास्त्र जैसे आत्मकल्याण करनेवाले विषयका ज्ञान देने वालेका जितना उपकार मानें उतना ही कम. ज्ञान जहांसे मिले लेने योग्य है. तपगच्छके एक यतिने चाहे जिस लिये ही क्यों न भलाई क्यों न बताई हो परन्तु इसके लिये वह धन्यवादपात्र अवश्य है.

१८४५ में श्री अजरामरजी आचार्य पदवीपर (लींबडीमें) बैठे. इनका जन्म १८०९ में हुआ, १८१९ में दीक्षा ली, १८४५ में आचार्य हुए, १८७० में देहोत्सर्ग हुआ.

इनके बाद इनके शिष्य देवराजजी हुए. ये कच्छ–कांडाकराके रईस थे. इन्होंने १८४७ में कच्छमें विहार किया उस समय कच्छमें आठकोटीकी श्रद्धा थी. इस मुनिने छहकोटी श्रद्धा प्ररुपण की, इस बारेमें बेहद तारीफ करता हुआ इस संघाडाका एक लेखक लिखता है: " अज्ञानतिमिर दूर कर इन्होंने श्रावकोंको आठकोटी भुलाई और छहकोटी

अंगीकार कराई." संघाडाके विरुद्ध खडे होनेमें मुझे जो कारण मिले हैं उनमेंसे यह भी एक है. भाइयो ! कुल ९ कोटी, साधु ९ कोटी पचखाग करे (दशवैकालिक सूत्रके चौथे अध्ययनकी साख है) और श्रावक अपनी शक्तिके अनुसार ८ कोटी या ६ कोटी या ४ कोटीसे करे. क्या छहकोटीके प्ररुपण करनेवाले कि जो आठकोटीको (याने विशेष पवित्रताको) अज्ञानतिमिर गिनते है इस बातकी गेरन्टी दे सकते हैं कि ६ कोटी सामायिक करनेवाले सब (अरे दशमांश भी) मन-वचन और कायसे "पाप कर्म न करना, न कराना" इस नियमको पूर्ण रीतिसे पालते है; सामयिकके समय स्वयं-छहकोटीका उपदेश देकर आठकोटीको अज्ञानतिमिर कहनेवाले मुनि ही 'रास' वांचते हैं, राम कृष्णके पराक्रम पढकर रस उत्पन्न करते हैं जिससे सुननेवाले प्रसन्न होते हैं इतना ही नही पराक्रमोंकी तारीफ भी करते हैं और कोई २ पराक्रमीको शाबासी देनेके साथ पापीको मार मार करनेका भी विचार करते हैं. अर्थात् मनको

स्थिर करना थोडे मनुष्योंसे ही हो सकता है. कितनेक तो सामयिकमें व्यापारकी व्यवस्था करते हैं ! तो ऐसोंको छहकोटी प्रत्याख्यान देना भी क्या 'अज्ञान तिमिर' नही कहा जायगा ? ऐसोंको तो "वचन और कायासे पाप कर्म न करना न कराना ऐसा चारकोटी प्रत्याख्यान ही देना चाहिए. तैरना सीखनेवाले किसी मनुष्यको दरियामें कूदनेकी सलाह देनेवाला क्या उसका खून करनेका अपराधी नही होता ! शक्तिसे ज्यादा बोझ नही डाला जा सकता. सामयिक ९ कोटी हो सकता है. ८ कोटी, ६ कोटी, ४ कोटी भी होसकता है. अमुक समय तक समभाव धारण करने के लिये यह व्रत है. समभावके उतरते चढते भेद हैं. ज्यादा शक्तिवाला मनुष्य ऊंचीसे ऊंची सीढीपर चढ सकता है और कोई पहली सीढीपर ही ठहर सकता है.

आठकोटी खराब है और छहकोटी सही हैं ऐसा कहना भ्रममात्र है. इन्होंने तो उलटा 'अज्ञान तिमीर' बढाया है. आठकोटी ही सामायिक होसकता है ऐसी हट करनेवाले भी

लोगोंको बहकाते हैं. ऐसी खींचातान अपना पांडित्य दिखानेको होती है, धर्मके लिये नही. अस्तु; कच्छमें छहकोटीकी मान्यताके महात्मा श्री देवराजजीने छहकोटी मत स्थापित किया उनके देवजी स्वामी आदि शिष्य हुए.

१८७९ में देवराजजी महाराजने काल किया और फिर भाणजी स्वामी गद्दी पर बैठे (१८५५ में दीक्षा और १८८३ में देहोत्सर्ग.) फिर देवजी स्वामी हुए. ये बीकानेरके लुवाणा थे. १० वर्षकी उम्रमें १८६० में दीक्षा ली, १८८६ में गद्दी पर बैठे. ऐसे परिवार बढते २ संवत् १९१५ में श्री देवजी स्वामीके गुरुभाई श्री अवचलजी तथा उनके शिष्य हेमचंदजी १२ साधुओंके साथ धर्मशालामें उतरे और जुदाही संघाडा कायम किया. इसका नाम 'संघवीका संघाडा' पडा.

लिंबडी समुदायके पूज्य श्री दीपचंदजी महाराज विद्वान् और शांत स्वभावी मनुष्य थे. इन्होंने १९०१ में दीक्षा ली. १९३७ में आचार्य पद पाया. इस समय इस समुदाय का काम और समुदायोंसे अच्छा चलता है.

इसमें कुल १०० एक साधु साध्वी मौजूद हैं. पूज्य पदवी श्री मेघराजजी महाराज और आचार्य पदवी श्री देवचंदजी महाराज भोग रहे हैं. दोनों गुणवान हैं. इस संघाडेने एक दो वर्ष पहले 'साधु परिषद्' भर कर सुधारे दाखिल किये थे और सडे हुए अंगको दूर फैंकनेका नमूना दिखाया था. इसके कितने ही मुनि जाहिर उपदेश करनेको प्रसिद्ध हैं. संस्कृतके अभ्यासके लिये दुसरे संघाडाओं- से इस संघाडेमें ज्यादा ध्यान दिया जाता है.

प्रकरण ५.

पट्टावली पर पंजाब पक्षका प्रकाश.

सन् १९०७ के दिसम्बरमें मैं पंजाबकी मुसाफरीको गया था. इस ओरके स्वधर्मी और साधुओंकी रहन गतका अभ्यास करनेका मुझे मौका मिला था. उस समय ऐतिहासिक हेर ढूंढनेके लिये भी प्रयत्न किया था. हांलांकि मैं पंजाबमें बहुत कम ठेहरा था, इससे ज्यादा छान बीन न कर सका परन्तु थोडे बहुत घंटोंको भी मैंने व्यर्थ न जाने दिया. पट्टावलीके बारेमें जो कुछ पंजाबमें मेरे जाननेमें आया वह यहां पर लिखता हूं.

आज तक गुजरातमें यही सुन पडता है कि लोंकाशाहने जैन धर्मका मूलवाद आज्ञर फिर चक्षु किया और उसके पुनरुद्धार किये हुए धर्मके लोग स्थानकवासी-साधुमार्गी ढुंढिया कहाये. परन्तु पंजाबमें कुछ और ही सुना. यहां जो कुछ सुना वह कितने अंशमें

सच है यह फिर देखेंगे; परन्तु जो कुछ सुना उसे वैसाका वैसा ही प्रकाशित करना मैं अपनी फर्ज समझता हूं, कि जिससे संशोधक सार खींच ले.

मेरे खयालमें आता है कि जैनधर्ममें जो ८४ गच्छ कहे जाते हैं वे साधुओंके नहीं, यतिओंके हैं. उन यतिओंमेंके कितने ही पुरुषोंने क्रिया उद्धार कर 'साधु' नाम धारण किया परन्तु गच्छके नाम तो वे के वे बने रहे. स्थानकवासी-साधुमार्गी या ढूंढिया ये कोई गच्छ नही हैं क्योंकि ये यतिके भक्त नही हैं, परन्तु साधुके अनुयायी हैं-अर्थात् कंचन और कामिनीको बिलकूल छोड देने वाले, जैन सूत्रोंकी आज्ञानुसार शुद्ध क्रिया करने वाले साधुओंका कभी अभाव नही हुआ (और भगवान वीरके निर्वाण के बाद २१००० वर्ष तक अभाव होना संभव ही नही है) श्री महावीर स्वामीसे आजतक कोई काल ऐसा नही बीता जिसमें साधु रहा ही न हो. पंजाब की पट्टावली कह रही है कि श्री महावीरसे ६१ वी 'पाट पर श्री ज्ञानजी

ऋषिजी हुए. इन्होने १५०१ में दीक्षा ली. इनके पास ४५ भव्योंने दीक्षा ली थी. इनको पहला उपदेश अमदावादमें 'गृहस्थ' लोंकाशाहने दिया था. श्री लोंकाशाहने सद्ज्ञान पाया परन्तु वृद्धताके कारण दीक्षा न ले सके इससे उन्होंने अपने सिखाये हुए ४५ उम्मीदवारोंको ज्ञानजीके पास भेज कर दीक्षा दिलवाई. इन ४५ मेंसे ४ चारने समुदाय चलाये. इनके नाम: (१) भानु लुणाजी (२) भीमजी (३) जगमालजी (४) हरि सेनजी था. श्री भानु लुणाजीसे २९ वी पीढीपर महात्मा श्री अमरसिंहजी पंजाबी हुए. इनकी पाट पर इस समय महात्मा पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज विराजमान है (श्री महावीर स्वामीसे ८६ वी पीढी पर पूज्य श्री अमरसिंहजी हुए.)

श्री भानु लुणाजी आदि ४ साधुओंमेंसे ४ संप्रदाय चली. उनमेंसे इस समय नीचे लिखे मुजब साधुजी मौजूद हैं:—

(१) मारवाडमें श्री कहानजी ऋषिके प्रसिद्ध काव्यकार श्री तिलोकचंदजीके शि-

ष्योंसे श्री दोलत ऋषिजी (जिनका चोमासा अभी हालमें राजकोटमें हुआ था.) हैद्राबादमें विराजमान बालब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी तथा पूना जिल्लेमें विचरते हुए श्री रत्न ऋषिजी वगैरा विद्यमान हैं.

(२) दरियापुरी श्री धर्मसिंहजी जो पहले श्रीपूज्य थे फिर साधु मालवेमें ताल-पंपालकी ओर विचरते थे उनके शिष्य.

(३) पूज्य श्री मलूकचंदजी लाहोरी जिनके शिष्य पूज्य श्री सोहनलालजी महा-राज पंजाबमें विचरते हैं और जिनके आधीन १०० साधुजी और ६० आर्याजी विराजते हैं.

(४) पूज्य श्री अजरामरजी महाराज जिनकी संप्रदायके विद्वान मुनि ऋषिराजजीके मृत्युके समाचार कुछ समय पहलें प्रसिद्ध हो चुके हैं. इस संप्रदायमें इस समय श्री मंग-लसेनजी आदि साधु यमुनापार आगरेकी ओर विचरते हैं.

इन चारों समुदाय और श्री महावीर

स्वामीके वीचमें अटूट संबन्ध चला आता है अर्थात् वीचमें खोट कभी नही पडी. हों, किसी समय साधुओंकी संख्या न कुछ सी ही रह गई थी. यतिओंके वढ जानेसे ये सब लोगोंको नजर न आते थे परन्तु इससे यह नही कहा जासकता कि साधु रहे ही नही. श्री भगवती सूत्रके २५ वें शतकमें लिखा है कि छेदोपस्थापनीय चारित्रका अंतराय ६३००० वर्षतक चलेगा. छठा आरा २१००० वर्ष, १ आरा २१००० वर्ष, २ आरा २१००० वर्ष, यों ६३००० वर्ष छेदोपस्थापनीय चारित्र देखनेमें न आयगा. फिर श्री पद्मनाभजी तीर्थंकरके शासनमें वह चारित्र ठीक होगा और वरावर चलेगा. केवल ऊपर कहे हुए ६३००० वर्ष समयमें ही वह नही रहेगा. इस हिसावसे इस कालमें उक्त चारित्रका बंध होना संभव ही नही है. दिगम्बर सम्प्रदायकी मान्यताके मुआफिक भी पंचम आराके अंततक वह चारित्र रहेगा (सुदृष्टि तरङ्गिणी)

पंजाबकी पटावलीकी नकल *

(१) श्री सुधर्मास्वामी (२) श्री जंबुस्वामी (३) श्री प्रभवस्वामी (४) श्री स्वयंभवस्वामी (५) श्री यशोभद्रस्वामी (६) श्री संभूतविजयजी (७) श्री भद्रबाहुस्वामी

---

*पहले कहे मुताबिक मैं इस पट्टावलीके बारेमें अपनी कुछ राय नही देसकता. मूर्तिपूजकोंके अलग २ साधुओंकी बनाई पट्टावली जैसे एक दूसरीसे जुदी ही है वैसे ही खेदकी बात है कि साधुमार्गी साधुओंकी बनाई हुइ पट्टावलियां भी कदाचित् ही कोइ मिलती हों. अपनी २ महिमा बढानेके लिये प्रत्येक समुदायने ऐसी २ दन्तकथायें जोड दी हैं कि सत्यके समीप पहुंचना अनेक पट्टावलियोंको इकठा कर छानबीन किये बिना महा कठिन है. तो भी पूर्ण सत्य-ज्ञान होना तो असंभव है. ऐसा होने पर भी पट्टावली (ठीक) तैयार करना बडा ज़रूरी है और इस कामको मुनियोंको अवश्य करना चाहिए. पूर्व समयमें धर्मके नामसे बहुत किंवदन्ती चलपडीं और इतिहास न लिखा गया, इसी की ये सब गडबड है.

(८) श्री स्थूलीभद्रस्वामी (९) श्री आर्य महागिरी (१०) श्री बलसिंहस्वामी (११) श्री सुव्रतस्वामी (१२) वीरस्वामी (१३) श्री संडीलस्वामी (१४) जीतधरस्वामी (१५) श्री आर्यसमद्रस्वामी (१६) श्री नंदलास्वामी (१७) श्री नागहस्तस्वामी (१८) श्री रेवंतस्वामी (१९) श्री सिंह-गणजी (२०) श्री थंडलाचार्य (२१) श्री हेमवंतस्वामी (२२) श्री नागजितस्वामी (२३) श्री गोविंदस्वामी (२४) श्री भूत-दिनस्वामी (२५)छोहगणस्वामी (२६) श्री दुसगणिस्वामी (२७)श्री देवर्धिक्षमाश्रमण (२८) श्री वीरभद्रस्वामी (२९) श्री शंकरभद्रस्वामी (३०) जसभद्रस्वामी (३१) श्री वीरसेन-स्वामी (३२) श्री वीरग्रामसेनस्वामी (३३) श्री जिनसेनस्वामी (३४) श्री हरिसेनस्वामी (३५) जेयसेनस्वामी (३६) जगमालस्वामी (३७) श्री देवर्षिजि (३८) श्री भीमऋ-पिजि (३९) श्री कर्मजित्स्वामी (४०) श्री राजर्षिजी (४१) श्री देवसेनजी (४२) श्री शंकसेनजी (४३) श्री लक्ष्मीलाभजी

(४४) श्री रामर्षिजी (४५) श्री पद्मसूरिजी (४६) श्री हरिसेनजी (४७) श्री कुशलदत्तजी (४८) श्री जीवनऋषिजी (४९) श्री जयसेनजीस्वामी (५०) श्री विजयऋषिजी (५१) श्री देवर्षिजी (५२) श्री सुरसेनजी (५३) श्री महासुरसेनजी (५४) श्री महासेनजी (५५) श्री जयराजजीस्वामी (५६) गजसेनजीस्वामी (५७) श्री मिश्रसेनजीस्वामी (५८) श्री विजयसिंहजीस्वामी (संवत् १४०१ में हुए 'देवडा' जाति) (५९) श्री शीवराजऋषिजी (पाटनके कुणवी १४२७ में हुए) (६०) श्री लालजीमल (मानसके 'वाफणा' रहीस १४७१ में हुए.) (६१) श्री ज्ञानजी ऋषि, (सेराडाके सुराणा जाति; १५०१ में दीक्षा ली)

(६२) श्री भानु लुणाजी, भीमजी, जगमालजी तथा हरसेनजी ये ४ और ४१ पुरुष यों ४५ पुरुष श्री लोंकाशाहके उपदेशसे साधु हुये थे (संवत् १५३१ में जब भस्म ग्रह उतरा और दया धर्म की उदय पूजा हुई) (६३) श्री रूपजी महाराज (६४) श्री जीवराजजी (६५)

श्री भावसिंहजी (६६) श्री लघुवरसिंहजी (६७) श्री यशवंतजी (६८) श्री रूपसिंहजी (६९) श्री दामोदरजी (७०) श्री वनराजजी (७१) श्री चिन्तामणीजी (७२) श्री क्षेमकर्णजी (७३) श्री धर्मसिंहजी (७४) श्री नगराजजी (७५) श्री जयरामजी* (७६) श्री लवजी ऋषिजी (१७०९ में हुए इस वक्तसे यतिओंने 'ढुंढिया' नाम अपमान करनेके लिये रक्खा) (७७) श्री सोमजी ऋषि (७८) श्री हरिदासजी (७९) श्री वन्द्रावनजी ऋषि (८०) श्री भवानीदासजी ऋषि (८१)

---

* इस जगह मूल प्रतिमें लिखा है कि कि गिरिधजी ऋषि लोंका गच्छमेंसे निकले परन्तु यह समझमें नहि आता कि यह इशारा नं ७५ के साथ है या ७६ के. तथापि इतना जान पडता है कि इन दिनों यतिओं की तादाद बहुत वढ गई थी. और लोंकाशाहके पुनरुद्धार किये हुए धर्मके उपदेसक भी-ज्यादा तादादमें पीछे यति हो गये थे और इन यतिओंमेंसे बहुतसोंने शास्त्रोक्त साधु धर्म अंगीकार कर लिया.

पूज्य श्री मल्लूकचंदजी लाहोरी (बडे प्रसिद्ध पुरुष हुए) (८२) पूज्य श्री महासिंहजी (बडे परिवारके अग्रेसर और प्रसिद्ध पुरुष हुए) (८३) पूज्य श्री कुशालसिंहजी (८४) श्री स्वामी छजमलजी तपस्वी (पूज्य पदवी कुशालचंदजीके गुरुभाई श्री नागर मलजीको मिलीथी) (८५) श्री स्वामी रामलालजी (८६) पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज (१८९८ के वैशाख बुद २ के दिन दीक्षा ली थी. अमृतसरके ओसवाल; समर्थ विद्वान और प्रतापी थे) (८७) पूज्य श्री रामबक्षजी महाराज (अलवर निवासी २५ वर्ष की उम्रमें १९०८ में दीक्षा ली) (८८) पूज्य श्री मोतीरामजी (पूज्यपदवी १९३९) (८९) पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज (१९३३ में दीक्षा ली; १९५१ में पदवी मिली. पूज्य श्री इस समय पंजाबमें अमृतसरमें बिराजमान है.)

इस तरह पंजाबके वर्तमान मुनियोंका संबध मिलता है. और २ प्रान्तोंमें विचरते हुए मुनिराजोंके पास भी इस तरह संग्रह किया हुआ आपना २ संबन्ध होगा तो होगा.

श्री लोंकाशाहने अपने सिखाये हुए ४५ उम्मीदवारोंको श्री ज्ञानजी ऋषिके पास भेजकर दीक्षा दिलाई. इन ४५ मेंसे ४ ने संप्रदायें चलाई, जो ऊपर लिखे मुआफिक प्रसिद्ध हैं. अर्थात् सनातन जैन जलके झरेको ४५ सीरोंसे कायम रखने वाले उपकारी लोंकाशाह थे, इसमें कोई सन्देह नहीं. परन्तु उन्होंने किसीको अपना चेला नहीं बनाया और सर्वथा सूखे हुए झरेको सजियल किया. हां, इतना कह सकते हैं कि झरा सूखने लग गया था, इधर उधर कहीं जल बहुत ही धीरे धीरे कुछ कुछ बहता था (परन्तु था शुद्ध बिना मेलका) इसी जलको सजीवन रखनेके लिये स्वयं 'गृहस्थ' रह कर भी लोंकाशाहने बड़ी मदद की.

'बाईस सम्प्रदाय' के साथ ऊपर लिखी हुई बातका कोई संबन्ध नहीं है. उनका इतिहास—पंजाबके कहने मुआफिक—ऐसा है कि अमदावाद पास जो सरखेज है वहांके भावसार श्री धर्मदासजीने धर्मज्ञान पाकर अपने आप श्री भगवती सूत्रकी साक्षीसे दीक्षा ले

ली और ९९ मनुष्योंको दीक्षा दी. धर्मदा-
सजी बडे पंडित, बडे बुद्धिमान और बडे
तपस्वी थे. बहुत देशोमें विहार कर बहुतों-
को उपदेश कर धारानगरीमें इन्होंने संथारा
किया था. इनके ९९ शिष्योंमेंसे २२ ने
समुदाय चलाये, जो 'बाईस समुदाय'के नाम-
से जाने जाते हैं.

इस तरह पंजाब आदिमें विचरते हुए
पूज्य श्री सोहनलालजी वगैरा ४ समुदायके
साधु २२ समुदायमें नही है, यद्यपि उनकी
मान्यतामें भिन्नता है और न इसमें सन्देह है
कि चार समुदाय और बाइसटोला ये सब
सनातन साधुमार्गी जैन धर्मके प्रवर्तक और
नेता हैं. इसके देखनेसे यह भी मालूम होता
है कि गुजरात-काठियावाडके साधु लोंका-
गच्छीय यतिओंको क्यों नही योग्य मान देते?
जब उनके इतिहास साथ लोंकाशाहका कोई
संबन्ध ही नही है तब व क्यों अपनेको परि-
ग्रहधारी लोंकागच्छीय यतिओंका कृतज्ञ समझे?

यहांपर प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'गच्छ'
यह नाम जो यतिओंके लिये ही हो तो फिर

लोंकागच्छी 'साधु' कैसे कहा जासकता है? उत्तर इसका यह है कि गृहस्थ लोंकाके उपदेशसे जिन्होंने 'साधु' ता स्वीकार की थी वे कुछ 'लोंकागच्छी' नहीं कहलाये थे परन्तु उनमेंसे जो शिथिल होकर 'यति' हो गये थे वे अपनेको लोंकागच्छी कहने लगे थे. कुछ भी हो, 'लोंकागच्छ' यह नाम यतिओंके लिये ही है; साधुओंसे इसका कोइ संवन्ध नहीं है. यद्यपि लोंकाशाहके उपदेशसे ही साधु हुए थे यह सच है तथापि वे दीक्षाधारी तो पंचमहाव्रतधारी साधुके पास ही हुए थे और वे साधु गच्छमें गिने ही नहीं जासकते. महावीरस्वामीके समयमें या उसके वाद साधुमंडलीके लिये 'गच्छ' नाम था ही नहीं. गच्छकी स्थापना तो १४३६ में हुई है.

४ समुदायवाले बाईस समुदायसे पृथक् होनेपर भी वे अपनेको संपके लिये बाईस समुदायके कहलवाते हुए जान पडते हैं.

पंजाबमें जो कुछ देखने सुननेमें आया उससे मैंने यह लिखा है. अभितक मुझे इनमें बहुत शक है, जिसका समाधान ऐसी बहुत-

सी हकीकतोंपर विवेचन करनेसे होगा और इसी लिये मैंने यह हाल प्रकट किये हैं. यह हाल किसीको सच्चा झूटा प्रकट करनेके लिये नहीं, ऐतिहासिक हेर ढूंढनेके लिये जाहिर की है. कोई साधुजी या श्रावक बुरा न मानते हुए अपनी २ मान्यता स्वच्छ लिपिमें लिख भेजें (सप्रमाण), जिससे भरोसेका इतिहास बन सकेगा. हमारे साधुजीका कर्तव्य है कि अपने धार्मिक इतिहासमें भूल न रक्खें. ऐतिहासिक हेर ढूंढनेका काम अव्वलदर्जे साधुओंका है. यह उनके 'घर'का काम है घरका काम खुद करना चाहिए.

प्रकरण ६

सुधारे (Reform) का काम इतनेसे ही खतम होगा क्या ?

मैं कई वार कह गया हूं कि सुधारका काम कभी पूरा ही न होगा. चैत्यवासियोंके अंधेरको दूर करनेको लोंकाशाह प्रकट हो गये. और लोंकाशाहके वंशजोंका अन्धाधुन्धी दूर करनेको धर्मसिंहजी, धर्मदासजी, लवजी ऋषि वगैरा प्रकट हो गये; इसी तरह इस वर्गमें फैले हुए अंधेरको दूर करनेका मौका है. मैं नही कहता कि इस समय नया गच्छ या नया संघाडा निकालने की जुरूरत है; परन्तु इतना ही कहता हूं कि सुधार करने की जुरूरत है. अब इसके विषयमें कुछ कहता हूं कि वह कैसे करना चाहिए.

किसी भी बिमारका इलाज करनेके पहले चतुर वैद्य उसकी बिमारी की तलाश करता है. बिमारीका निदान किये बिना चि-

कित्सा अनुकूल नही होती. वर्तमान समयमें जैन साधुमार्गी मनुष्योंको सुधार की आव-श्यकता है और वे सुधार कैसे होने चाहिए इस बातको बतलानेके पहले उनका रोग पहचानने की जुरूरत है. इस आंतरिक रोग को साफ २ कहने की यह जगह नही है (इसके कई कारण हैं) तथापि जुरूरी वातें यहां लिखूंगा और फिर दवा वताऊंगा और साथ ही इतना भी कह देता हूं कि 'सुधार' की जुरूरत है तो 'सुधारक' की भी जुरूरत है.

सच्चे हृदयसे चिकित्सा करने वाले प्रत्येक पुरुषको स्वतः मालूम पड जायगा कि (१) संघाडोंके नामसे क्लेश वढ गये हैं (२) ज्ञानका शौक कम हो गया है और इससे अनेक ढोंक आते जा रहे हैं (३) सच्चे तत्त्वोपदेशक पर जुल्म किया जाता है (४) आचारशुद्धिकी आवश्यकता वहुत कम जन जानते हैं (५) श्रावकोंके पास व्यर्थ व्यय कराया जाता है.

इन सब रोगों की दवाइयां दो हैं. एक मालिश करने की और एक पिलाने की अ-

र्थात् वाह्योपचार और आन्तरिक उपचार.

वाह्योपचारका नाम 'व्यवस्था' है. हरेक समुदायके साधु अलग २ फिरे इसकी अपेक्षा सब समुदाय इकट्ठे हो कर अपनेमेंसे किसी एक प्रभावशाली महा तपस्वी विद्वानको 'मुरव्वी' कायम कर उनकी आज्ञाके अनुकूल सब संघाडोंके पूज्य अपने २ परिवारको चलावें. जो ऐसा न किया जायगा तो जैन संघ कभी उत्तम स्थितिमें न आवेगा. और जो साधु ऐसे उत्तम विचारको हँस कर अशक्य बतलायगे तो ऐसा सिद्ध होगा कि वे स्वयं स्वेच्छाचारि होना पसन्द करते हैं.

आन्तरिक उपचार ज्ञानका है. उपर लिखे मुआफिक व्यवस्था होते ज्ञानकी वृद्धि होसकती है. जब ज्ञानकी तलाशमें साधुवर्ग लग जायगा तब उसकी दृष्टि बहुत दूर २ तक फैल जायगी और सत्य कहनेवालेको तथ बुरा भी उत्तम विचारसे कहनेवालेको वे शत्रु न गिनकर उसकी बातमेंसे सत्यका ग्रहण करेंगे. इससे जैनधर्म विशेष प्रकाशमें आवेगा.

जो एक 'गुरु' के कायम करनेकी स-

लाहको सर्वथा असंभव ही समझते हो उनके लिये एक और रास्ता है. हरेक संघाडेके मुनिवरोंमेंसे तत्त्वग्राही मुनियोंका एक मंडल स्थापित करना चाहिए. इस मंडलमें प्रत्येक संघाडेका मुनि दाखिल होसकता है और ऐसा होनेपर भी अपने गुरु और संघाडेको उतने ही मानसे देखसकता है. इस मंडलका कुछ खास नाम रखनेकी जुरूरत नहीं है (जैन-धर्म मंडल कहनेसे ही काम चलजायगा) और न इस बातकी जुरूरत है कि अमुक साधु उस मंडलका है ऐसा प्रकट किया जावे. इन साधुओंमेंसे प्रत्येक को अपनी शक्ति सत्यकी सेवामें लगानेका व्रत लेना चाहिए. मंडल जो कुछ सत्य स्वीकार करले उसकी हीमायत करनेमें हर तरहकी जोखम उठानेको तैयार रहना चाहिए. उग्र विहार कर चारों ओर जागृति उत्पन्न करना चाहिये. सिर्फ पतली दालके खानेवाले बनियोंका ही उपदेश न देकर आमतोरपर पब्लिकको उपदेश करना चाहिए. दिनभर ज्ञान-ध्यानमें रहना चाहिए. योगाभ्यासकी

खास लगन रखना चाहिए. (जिनसे अभ्यास न होसके वे भी नीतिका उपदेश करनेमें बहुत ही उपयोगी होसकते हैं.) उन्हें किसि समुदाय–किसी संघाडेके विरुद्ध एक अक्षर भी न कहना चाहिए. वादविवादके लिये आये हुए स्वधर्मी या अन्य धर्मी साधु या श्रावकके साम्हने मौनव्रत धारण कर लेना चाहिए. "स्वयं दूसरोंके लिये ही जीते है और दूसरोंकी आंख सुधारनेसे ही अपनी आत्माकी उन्नति होती है" यह सिद्धान्त उन्हें हमेशा सुवर्ण अक्षरोंसे हृदयमें धारण कर रखना चाहिए. ऐसे मंडलमें प्रत्येक संघाडेके दो दो तीन २ साधु प्रसन्नतासे दाखिल होकर जैसे २ भारी काम करते जायगे और दुनिया देखती जायगी वैसे २ ही दुसरे साधु अपने आप मिलते जायगे. ऐसा होते २ एक दिन ऐसा आयगा (मुझे पूर्ण श्रद्धा है कि रागद्वेषको दूर करनेके लिये उत्पन्न हुए ऐसे "जैन मंडल" में ही सब साधु आजायगे) वाहेमें सिर्फ थोडेसे निकम्मे साधु ही भरे रहेंगे. इस तरह धीरे धीरे धर्मका पुनरुद्धार अच्छी तरह होसकेगा.

इसकी हलचल शुद्धाचारी, अनुभवी विद्वान किसी साधुजीको प्रारम्भ कर देना चाहिए. ऐसे वैसे मामूलि साधुका यह काम नही है कि वह इसमें कामयाब हो जावे. मैं स्वयं गुप्त रीतिसे सेवा करनेको तैयार हूं. सलाह देने योग्य मैं नही हूं परन्तु योग्य आत्माओंकी आज्ञा पालन करनेको तैयार हूं. ऐसी जो हलचल हो वह सर्वथा गुप्त रीतिसे होनी चाहिए. जो कुछ होना चाहिए उसके मुकाबलेमें, जो कुछ हो सकेगा वह बहुत ही कम होगा. इस लिये जाहिरमें 'हा हूं' करनेकी जुरूरत नही है.

सार यह है कि आज तक संघाडे बढानेमें धर्म माना गया अब घटानेमें धर्म मानना चाहिए. संघाडे कम करने की योजना उपद्रवी नही परन्तु शान्त और नीतिमय है. आज सबको नही रुचेगी परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि आज नही तो कल–पांच–पचास वर्षमें–मेरे दूसरे जन्ममें भी अवश्य ही अमलमें आवेगी !

ये मेरी आशा पूरी पाडना मुनिवरोंके हाथमें है. उनके चारित्र पर, उनके विचारों पर, उनकी भूलों पर नुकताचीनीकरनेका